।। ओ३म्।।

ईश्वर अवतार शास्त्र सम्मत है?

(अध्यात्म, राष्ट्रीय एवं सामाजिक संदर्भ में)

लेखक

डॉ. चंद्रशेखर लोखंडे (शास्त्री)

-: प्रकाशक :-

वैदिक प्रकाशन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं.)

15. हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23360150

लेखक	● डॉ. चंद्रशेखर लोखंडे (शास्त्री)
संपादक:	● आचार्य अनिल शास्त्री
©	● सर्वाधिकार सुरक्षित
ISBN	● 978-81-936395-2-8
प्रकाशक	**वैदिक प्रकाशन** दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं.) 15, हनुमान रोड, नई दिल्ली–110001 दूरभाष : 011–23360150
संपर्क	
Website	www.thearyasamaj.org
E-mail	aryasabha@yahoo.com
Mobile	9540040339, 9540045898
Online book reading	www.elibrary.thearyasmaj.org
Online shopping	eshop.thearyasamaj.org
प्रथम संस्करण	महर्षि दयानन्द के काशी शास्त्रार्थ– 150 वें वर्ष पर
मूल्य	40

thearyasamaj.org

प्रस्तावना

डॉ. चंद्रशेखर लोखंडे द्वारा लिखी गई ''ईश्वर अवतार शास्त्र सम्मत है?'' नामक पुस्तक वैदिक सिद्धांतों का सुबोध विवेचन कर स्वाध्यायशील जिज्ञासुओं के लिए उत्तम ज्ञान देने वाली है। मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद इन दोनों विचारों को 99 प्रतिशत हिंदू समाज मानता है। ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक अंतर्यामी है ऐसी वेदों की धारणा है, यह मान्य करते हुए भी वह परमेश्वर मूर्ति में भी है। ऐसी धारणा होने के कारण समाज में अधर्म, अन्याय, पाखंड निरंतर बढ़ रहा है। परमेश्वर राम के रूप में जन्म लेता है ऐसा सभी मानते हैं। एक ओर तो ईश्वर को सर्वव्यापक मानना और दूसरी ओर उसे मूर्ति में भी मानना विरोधाभास ही है। सामान्य व्यक्तियों को यह समझ में नहीं आता कि जो ईश्वर सर्वशक्तिमान्, निराकार है वह अल्पशक्तिमान एवं एकदेशी कैसे हो सकता है? महर्षि दयानंद सदृश विद्वानों ने ईश्वर निराकार है इत्यादि शास्त्रों, वेदों और उपनिषदों के आधार पर सिद्ध किया है, परंतु लोगों ने अपनी भूमिका बदलते हुए कहा कि ईश्वर निराकार भी है और साकार भी। परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए मूर्तिपूजा एक सीढ़ी है, इस प्रकार का कमजोर तर्क कुछ पौराणिक भाई देते हैं। जब ईश्वर सर्वशक्तिमान है तो वह अवतार क्यों नहीं ले सकता? यह उनका सामान्य तर्क है। परंतु तर्क प्रमाण आदि के द्वारा समझा जा सकता है कि ईश्वर को अवतार लेने की आवश्यकता ही नहीं है।

आजकल मूर्तिपूजा का प्रचलन कुछ अधिक ही बढ़ गया है उसी प्रकार अवतार का भी यही हाल है। जबकि ये दोनों ही धारणाएं अवैज्ञानिक एवम् अवैदिक होते हुए भी 99 प्रतिशत हिंदू समाज इन मान्यताओं से ग्रस्त है। इसलिए इस विषय में शास्त्रीय चर्चा निरंतर चलती रहनी चाहिए। पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय जी ने इस विषय पर अनेक छोटी पुस्तकें लिखी थीं, जिनका मराठी अनुवाद स्व. हरिसखाराम तुंगार जी ने ट्रैक्ट के रूप में 75 वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था।

इस समय देश में अवतारों की भीड़ बढ़ती जा रही है। मैं समझता हूं कि यह पुस्तक हिंदू समाज के प्रबुद्ध वर्ग की बुद्धि उद्वेलित करने में अवश्य सक्षम होगी। डॉ. चंद्रशेखर लोखंडे जी ने जो मसि और असिधारा का व्रत लिया है आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध होगा। मैं उन्हें इसके लिए बधाई देता हूं।

हमारे ही परिवार के डॉ. चंद्रशेखर लोखंडे आजकल धार्मिक व सामाजिक सुधारों के विषयों पर लिख रहे हैं। यह एक स्वागत योग्य कदम है। इस साहित्यिक कार्य में उनके पदार्पण का मैं स्वागत करता हूं।

अवतार संबंधी यह पुस्तक धर्म प्रेमियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पुनश्च डॉ. चंद्रशेखर लोखंडे का हार्दिक अभिनंदन करते हुए, यह पुस्तक ईश्वर के स्वरूप को जानने के लिए उपयुक्त सिद्ध होगी, ऐसा मेरा मानना है।

***

-पूर्व प्राचार्य देवदत्त तुंगार
स्वामी रामानंद तीर्थ विश्वविद्यालय,
नांदेड (महाराष्ट्र),
चलभाष : 9372541777

elibrary.thearyasamaj.org

ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता

मनुष्य विचारशील प्राणी है। निरुक्तकार महर्षि यास्क के अनुसार **"मत्वा कर्माणि सीव्यति"** जो अपने कर्त्तव्य कर्मों को विचारपूर्वक करता है, वही मनुष्य है। अत: ईश्वर अवतार के विषय में पौराणिक बंधुओं को भी अवश्य विचार करना चाहिए। अव+तृ धातु से अवतार शब्द की उत्पत्ति हुई है। इसका मतलब है कि नीचे उतरना या किसी वस्तु का महत्व कम करना। ईश्वर अवतार की बात को कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि जैसे मनुष्य एवं अन्य भोग योनियों में जन्म लेने वाले प्राणियों की तरह वह ईश्वर भी जन्म धारण करके संसार में आता है। वैदिक ज्ञानधारा के अनुसार चिंतन करें तो ज्ञात होता है कि जब संसार नहीं था तब भी वह ईश्वर था, संसार है, तब भी ईश्वर है और जब संसार नहीं रहेगा तब भी ईश्वर रहेगा। ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों तत्व अनादि हैं।

योगदर्शन, सूत्र-24, व्यास भाष्य के अनुसार **"ईश्वरस्य च तत्सम्बन्धो न भूतो न भावी"** ईश्वर जन्मादि के बंधन में नहीं आता, वह तो सदा मुक्त है। क्योंकि जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु भी होती है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म भी होता है। ईश्वर अजर-अमर है। ईश्वर का अगर जन्म माना जाए तो क्या वह गर्भ में आने से पहले वहां नहीं था और यदि वह माता के उदर से प्रकट होवे तो क्या वह पहले बाहर नहीं था। गर्भ में आना और जन्म लेना यह एक आत्मा के ऊपर घटित होने वाली घटना है। ईश्वर तो सर्वव्यापक है, वह तो रचना के भीतर भी है और बाहर भी, रचना के पहले भी और बाद में भी सर्वत्र व्यापक है। इसीलिए वह परमात्मा अजब-गजब रचनाकार होकर भी निराकार है। वह आकार ग्रहण करने के लिए मां के पेट में एक स्थान पर कैसे बंधा रहेगा? फिर जो जन्म लेगा वह मरेगा भी अवश्य। जो जन्म और मरण के बन्धन में रहेगा वह सामान्य मनुष्य ही होगा, ईश्वर नहीं।

ईश्वर अवतार शास्त्र सम्मत है? इस पुस्तक के लेखक डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे शास्त्री जी आर्य समाज के सुप्रसिद्ध चिंतक, लेखक और सुयोग्य

विद्वान हैं। आर्य समाज और महर्षि दयानंद सरस्वती के प्रति आपका समर्पण भाव स्तुत्य है। वैदिक धर्म के सिद्धांतों, मान्यताओं के प्रचार-प्रसार में आपका योगदान अनुपम है। आपकी महान सेवाभावी निष्ठा को ध्यान में रखते हुए कर्नाटक, महाराष्ट्र और हैदराबाद से आपको राज्य स्तरीय सम्मान प्रदान किए गए हैं। इसके लिए आपको बहुत-बहुत बधाई। श्री लोखण्डे जी ने इस पुस्तक में ईश्वर अवतार के अत्यंत महत्वपूर्ण विषय को विशिष्ट संवाद के रूप में सरल, सहज शैली में प्रस्तुत किया है, इसमें आपने एक पक्ष जो ईश्वर को साकार मानता है और दूसरा निराकार मानता है। दोनों वेद शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर बात करते हैं, इनमें एक पौराणिक पंडित है और दूसरा वैदिक विद्वान। दोनों पक्षों का यह संवाद अंत में यही सिद्ध करता है कि ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता। यह पुस्तक आर्य समाज के सभी वर्गों के लिए बहुत उपयोगी है, इससे आर्य समाज के सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार को बल मिलेगा। अतः श्री चन्द्रशेखर लोखण्डे शास्त्री जी को इस श्रेष्ठ पुस्तक के लिए बधाई तथा सभी पाठकों से अनुरोध है कि आप इस छोटी-सी दिखने वाली पुस्तक के स्वाध्याय से संसार की सर्वोच्च सत्ता, ईश्वर के सत्य स्वरूप को सही समझकर प्रमाण सहित दूसरों को भी समझाने में सक्षम होंगे।

elibrary.thearyasamaj.org

धर्मपाल आर्य
प्रधान
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

दो शब्द

डॉ. चंद्रशेखर जी भौगोलिक दृष्टि से मेरे परिसर के होने के बावजूद भी इनकी सृजन शीलता और संगठनात्मक शैली का परिचय मुझे गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में मिला। इनके व्यक्तित्त्व में संगीत, वक्तृत्त्व, लेखन, क्रीड़ा और विनोदप्रियता का अद्‌भुत संगम प्रारंभ से ही रहा है। इन गुणों के कारण आर्य समाज और वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार क्षेत्र में भी आप लोकप्रिय रहे हैं। आर्य समाज की तड़प और निष्ठा आपको अपने पिता श्री रामस्वरूप लोखंडे जी से प्राप्त हुई है। **''ईश्वर अवतार शास्त्र सम्मत है?''** यह पुस्तक आपने आर्य समाज का यश और भविष्य अधिक उज्ज्वल बनाने की दृष्टि से लिखी है। महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रचारक रहने के कारण प्रचार के मैदान में जो व्यावहारिक अनुभव आए हैं, उनका और उनके रचनात्मक मौलिक चिंतन का सुपरिणाम यह कृति है। आशा है समाज सुधार, राष्ट्र कल्याण और मानव मात्र के कल्याण में आस्था रखने वाले कार्यकर्त्ता उनकी इस रचना से तड़प और प्रेरणा पाकर अभिनय, अनुभव समृद्ध, अधुनातन प्रचार शैली को अपना कर आर्य जगत् के साथ-साथ संसार का भविष्य भी सुंदर और श्रेष्ठ बनाएंगे।

उज्ज्वल रहा अतीत भविष्य भी महान है।
यदि संभल जाए जोकि वर्तमान् है।।

***

-प्रा. (डॉ.) कुशलदेव शास्त्री (कापसे)
प्रपाठक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष,
नेताजी सुभाष चंद्र बोस महाविद्यालय, नांदेड-431602 (महाराष्ट्र)

समर्पण

स्मृतिशेष

प्रा. डॉ. कुशलदेव जी शास्त्री (कापसे)

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के मेरे सहपाठी
जिन्होंने आर्य लेखकों को अनुसंधानात्मक सृजनता की ओर
अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया,
ऐसे स्मृतिशेष डॉ. कुशलदेव शास्त्री (कापसे) को
यह कृति सादर समर्पित।

–चंद्रशेखर

elibrary.thearyasamaj.org

भूमिका

अवतार इस शब्द का स्थूल अर्थ अवतीर्ण होना या नीचे उतरना है। जो परमात्मा सर्वव्यापक आदि महान् शक्तियों से युक्त है, उसे अनित्य नाशवान, भौतिक देह में लाकर उसकी शक्ति को मर्यादित करना ही अवतार है। जो जन्म-मरण से रहित है, उसे जन्म मरण के बंधन में बांधना अथवा जो क्लेश कर्म इत्यादि से अत्यंत दूर है उसे क्लेश कर्म, सुख-दु:ख युक्त बताना ही अवतारवादियों का उद्देश्य है। हम जिन्हें प्रमाण मानते हैं, वे वेद, उपनिषद्, स्मृति, गीता आदि ग्रंथों में परमेश्वर को निर्गुण, निराकार ही नहीं, अपितु अकायम् शरीर रहित अविनाशी बतलाया गया है। फिर भी न जाने क्यों आजकल के भोंदु बाबा, पंडे-पुजारी अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए स्वयं को भगवान का अवतार घोषित करने में लगे हैं।

अब अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए वे सभी अवतारों को अयोनिज मानते हैं, अर्थात् मत्स्य, कच्छप, शूकर से लेकर राम, कृष्ण, विष्णु इत्यादि पर्यंत सभी अवतार अयोनिज् हैं। अब हम देखेंगे कि अयोनिज् किसे कहते हैं?

योनिज् का अर्थ होता है-गर्भाशय से जन्म लेने वाले प्राणी, उदाहरणार्थ मनुष्य, गाय भैंस, घोड़ा आदि। ये सभी प्राणी योनिज् वर्ग में आते हैं। इसे रचना शरीर विज्ञान की भाषा में जरायुज कहते हैं जिनकी वृद्धि ''जार'' (Placenta) में होती है। अवतारवादियों का कहना यह है कि ईश्वर का अवतार जन्म लेकर भी अयोनिज है। यह ''वदतो व्याघात्'' उनके इस तर्क में दिखाई देता है। शरीरधारी प्राणियों की उत्पत्ति वह फिर कोई भी शरीरधारी हो चार प्रकार से होती है।

प्रकार- 1. योनिज् 2. अंडज् 3. स्वदेज् 4. उद्भिज्

1. **योनिज** - गर्भाशय से। जैसे - मनुष्य, गाय, घोड़ा आदि।
2. **अंडज** - अंडों से। जैसे- मुर्गी, कौआ, चिड़िया, सांप आदि।
3. **स्वदेज्** - पसीने से अथवा नाली आदि से उत्पन्न जीव-जंतु। जैसे- जूं, दीमक, खटमल, कीड़े आदि।
4. **उद्भिज** - जमीन को चीरकर निकलने वाले पेड़-पौधे इत्यादि इन चार वर्गों में ही संपूर्ण सृष्टि के जीव-जंतु प्राणी आदि समाविष्ट होते हैं।

चौरासी लाख योनियों में घूमने वाले प्राणी (आधुनिक विज्ञान के आधार पर अब तक 20 हजार प्राणियों के प्रकार प्राप्त हुए हैं।) इन चार वर्गों में ही समाविष्ट होते हैं। हाथी और डायनासोर से लेकर अत्यंत सूक्ष्म जीव भी इन्हीं उत्पत्ति के चारों

प्रकारों में आते हैं। फिर ये अवतारवादी अवतार को अयोनिज् कहते हुए किस श्रेणी में रखते हैं? ये बिना आधार की बात है। केवल जन्म-मरण से बचाने के चक्कर में भगवान को अयोनिज कह देते हैं। फिर राम की उत्पत्ति कौशल्या माता से हुई या नहीं? श्रीकृष्ण को देवकी पुत्र कहते हैं या नहीं? मत्स्य, कच्छप, शूकर, वामन, बलराम, परशुराम, भगवान् विष्णु शरीरधारी ही थे, फिर इनका जन्म भी उसी तरह होना सिद्ध है जैसे राम कृष्णादि का। मैं कभी-कभी मनोविनोद के लिए भूतों की उत्पत्ति को 'अयोनिज्' कहता हूं। इसलिए 'अयोनिज् अवतार' भूतों की श्रेणी में आते हैं। ऐसा मेरा कथन है।

एक असत्य को सिद्ध करने के लिए कई बार असत्य बोलना पड़ता हे, यही अवस्था अवतारवादियों की है। फिर भी वे अवतारों को अयोनिज् सिद्ध नहीं कर सकते। भावनात्मक तथा कमजोर तर्कों से अवतारवाद सिद्ध नहीं किया जा सकता।

फिर क्यों न हम सहज सरल और सत्य पर आधारित यह सिद्धांत स्वीकार करें कि परमात्मा निराकार है और वह कभी जन्म नहीं लेता। जो जन्मता है वह मरता है। इस अटल सिद्धांत को मानकर निराकार अवस्था में ही उसकी उपासना क्यों न करें?

मैंने पौराणिक पंडित और वैदिक विद्वान के माध्यम से यह शास्त्रीय संवाद आपके सामने प्रस्तुत किया है। इससे पूर्व इस प्रकार के शास्त्रार्थ हुआ करते थे। अब वह परिस्थिति नहीं रही है कि शास्त्रीयवाद रखें जाएं। मैंने उसी पद्धति का प्रयोग इस दुर्लभ पुस्तक के द्वारा करने का प्रयत्न किया है। सर्वसाधारण लोगों को यह कठिन विषय बोधगम्य हो और वे अवतार की निरर्थकता को समझ सकें, इसलिए इस प्रश्नोत्तर विधा को मैंने अपनाया है।

इस पुस्तक के निर्माण में अनेक लोगों का जिनमें प्रा. अखिलेश शर्मा संस्कृत विभाग राजर्षि शाहू महाविद्यालय लातूर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मैं इस परिश्रम के लिए उनकी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।

साथ में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, महामंत्री श्री विनय आर्य एवं वैदिक प्रकाशन के सभी सदस्यों का भी हृदय से धन्यवाद करता हूं जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित कर सामाजिक प्रबोधन में अपना अमूल्य सहयोग दिया है।

***

-डॉ. प्रा. चंद्रशेखर रामस्वरूप लोखंडे
सीताराम नगर, लातूर-413531, महाराष्ट्र
दूरभाष : 9922255597

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
प्रस्तावना	03
ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता	05
दो शब्द	07
समर्पण	08
भूमिका	09
ईश्वर अवतार शास्त्र सम्मत है?	12
● वेद, उपनिषदों अवतारों का अस्तित्व	
● पुराणों में अवतार की कल्पना	
● वैदिक ग्रंथों में ईश्वर का स्वरूप	
● मध्यकाल में राष्ट्रीयता का ह्रास	
● सामाजिक निभेद का कारण जड़ पूजा	
ईश्वर के स्वरूप में कुछ शास्त्रीय प्रमाण	60
लेखक परिचय	63

elibrary.aryasamaj.org

ईश्वर अवतार शास्त्र सम्मत है?

पौराणिक पंडित – अवतार किसे कहते हैं?

वैदिक विद्वान – अवतार का अर्थ है किसी उच्च स्थान से नीचे उतरना। अव+तृ धातु से इस शब्द की उत्पत्ति हुई है, अर्थात् नीचे उतरना या किसी वस्तु का महत्त्व कम करना।

ईश्वर विषयक अवतार की अवधारणा का तात्पर्य 'परमेश्वर की वैकुंठादि ऊर्ध्वस्थानीय लोकों से पृथिव्यादि अधःस्थानीय लोकों में उतरना, अर्थात् मनुष्यादि विभिन्न योनियों में जन्म लेना। यदि इस शब्द के सूक्ष्म का अर्थ चिंतन करें तो किसी वस्तु का महत्त्व कम करना ही अवतार कहलाता है।

पौराणिक पंडित – कुछ लोगों के अनुसार वेदों में भी विभिन्न अवतारों का वर्णन पाया जाता है। क्या वेदों में अवतार का उल्लेख है?

वैदिक विद्वान – नहीं, वेदों में कही भी परमेश्वर के अवतार का उल्लेख नहीं है, परंतु वेद के विभिन्न मंत्र इस अवतारवाद का खंडन करते हुए परिलक्षित होते हैं। जैसे यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के आठवें मंत्र में ईश्वर के स्वरूप का बहुत ही सुंदर वर्णन मिलता है। **इस मंत्र में परमेश्वर के लिए 'अकायम्' (शरीर रहित) अस्नाविरम् (स्नायु रहित) इत्यादि विशेषणों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार**

के अनेकानेक मंत्रों से सर्वथा स्पष्ट होता है कि परमेश्वर अवतार नहीं लेता।

'वेद सबसे प्राचीन ग्रंथ है' यह सर्वमान्य सत्य है, अतएव वेदों में भी अवतार वर्ण है इस धारणा को धारण करते हुए अन्य अनार्ष ग्रंथों का इस विषय में प्रमाण प्रस्तुत करना अनुपादेय प्रतीत होता है।

पौराणिक पंडित – वेदों में वामनावतार का उल्लेख है, फिर भी आप वेदों में अवतार से इंकार करते हैं? यह आपका सत्य से पलायन है।

वैदिक विद्वान – आप वेद के किस मंत्र से वामनावतार सिद्ध करना चाहते हैं?

पौराणिक पंडित – लीजिए, मैं वामनावतार के प्रमाण में यजुर्वेद का यह मंत्र प्रस्तुत करता हूं–

इदं विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधेपदम्, समूढमस्य पाꣳसुरे।

–यजु. 5 अध्याय 15 मंत्र।

इस मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि भगवान विष्णु ने वामन अवतार ग्रहण कर इस ब्रह्मांड की परिक्रमा की और तीनों पगों में संपूर्ण सृष्टि को नाप लिया। इन तीनों पगों में विष्णु ने राजा बली के राज्य को भी ठगी से नाप लिया था। इस प्रकार इस वेद मंत्र के द्वारा वेदों से वामनावतार सिद्ध होता है।

वैदिक विद्वान – महाशय जी। इस मंत्र में विष्णु तीन पग आदि का उल्लेख आने मात्र से वामनावतार सिद्ध नहीं हो जाता। इसके लिए संपूर्ण मंत्र का निरुक्त और निघंटु में वर्णित शब्दार्थो के अनुसार अर्थ करना होता है। आपको यह किसने कहा कि यहां विष्णु नाम क्षीरसागर में शयन करने वाले लक्ष्मीपति का है। इस मंत्र में विष्णु नाम 'विष्लृ व्याप्तौ' ब्रह्मांड में व्याप्त निराकार परब्रह्म से है। तीन पग का भी उल्लेख है तो भी वामन बनकर बली राजा अर्थात् किसान के सिर पर पैर रखने की बेसिर-पैर की बात कहते हैं और इस प्रकार पौराणिक पंडितों ने किसान वर्ग को नष्ट कर दिया ऐसा कह दिया। यह तो ''मूषकपट'' न्याय की बात हुई। एक चूहे को कपड़े का टुकड़ा हाथ क्या लग गया वह शादी करने चल पड़ा। बात कहां से कहां आ गई?

दूसरा अर्थ विष्णु यज्ञ को भी कहते हैं। ''यज्ञो वै विष्णु'' (शतपथ 1/1/8/8) ''ते यज्ञमेव विष्णु पुरस्कृत्य ईयु:'' (एतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ 6/15) इस मंत्र के अर्थ परमेश्वर परक अथवा यज्ञपरक दो ही अर्थ होते हैं। परमेश्वर परक अर्थ में निराकार ईश्वर के तीन पग अग्नि, विद्युत और सूर्य के प्रतीक हैं और यज्ञ परक

अर्थ में यज्ञरूपी विष्णु पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोकों को व्याप्त करता है। सूर्य की तीन अवस्थाएं भी इन तीन पगों से अभिप्रेत हैं, उदय, उत्कर्ष और अस्त।

यह कहानी मनगढ़ंत है कि विष्णु के रूप में वामन अवतार ने दो चरण तो नाप लिए अब तीसरा पैर कहां रखें, तो राजा बली के सिर पर रख दिया। आज के तथाकथित पुरोगामी विचारक इसका अर्थ बलिराजा अर्थात् किसान के सिर पर पैर रखने की बात कहते हैं और किसानों को इस प्रकार वैदिक ब्राह्मणों ने नष्ट कर दिया ऐसा बतलाते हैं।

वैष्णव मत की स्थापना के पीछे का रहस्य यही है उन्होंने विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और भागवत पुराण में आए विष्णु शब्द को लेकर विष्णु के महत्त्व को अधिक बढ़ाया है। विष्णु को वेदों से जोड़कर अवतार सिद्ध करने की चेष्टा की गई लेकिन स्वामी दयानंद ने इस अर्थ में वामन अवतार की कल्पना को सिरे से खारिज कर दिया।

आपको यह जानकर थोड़ा आश्चर्य होगा कि पुराणों ने व्यक्ति महात्म्य को बढ़ावा देकर वेद, उपनिषदों के गूढ़ एवं ज्ञानमय अर्थों को नष्ट कर दिया। यदि राम, विष्णु अथवा कृष्ण आदि नाम वेदों में आते हैं तो ये नाम अथवा शब्द वेदों के बाद जन्मे महापुरुषों के कैसे हो सकते हैं। जैसे-पिता से पहले पुत्र का जन्म होना असंभव होता है उसी तरह राम, विष्णु आदि को वेदों में ढूंढ़ना या तो मूर्खता है अथवा छलावा है।

पौराणिक पंडित - वेदों को तो शंखासुर पाताल लोक में ले गया है, क्या यह सत्य है?

वैदिक विद्वान - वेद कोई वस्तु या पदार्थ नहीं जिसे उठाकर या हाथ पकड़कर लाया अथवा ले जाया जा सके। वेद का अर्थ है- ज्ञान और ज्ञान कोई भी प्राप्त कर सकता है। यदि आप कहते हैं कि कोई असुर वेदों को ले गया तो वह असुर और कोई नहीं अपितु हम भारतीयों का आलस्य, प्रमाद है और शंका का प्रतीक है। वही शंखासुर नामक राक्षस है।

आज भी उत्तर भारत व दक्षिण भारत के अनेक विद्वान अपनी परंपरा का अनुगमन करते हुए वेद संहिताओं को सस्वर कंठस्थ करते हैं एवं अपने पुत्रादियों को कंठस्थ कराते हैं। इन विद्वानों की महनीय तपस्या का ही ये फल है कि सृष्टि के आदि से प्रारंभ होकर अद्यावधि पर्यंत वेद ज्ञान की अविकल धारा अबाध रूप से बह रही है।

मध्यकाल की अज्ञान व स्वार्थरूपी कालिमा से कलुषित होकर ही कुछ पाखंडियों ने कहा कि वेदों को शंखासुर ले गया, परंतु आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती ने इस भ्रम मूलक अवधारणा का खंडन करते हुए जर्मनी से वेद संहिताएं मंगाई और यह सिद्ध किया कि वेद आज भी अखंड रूप में उपलब्ध हैं।

पौराणिक पंडित – वेदों में भगवान् का स्वरूप किस प्रकार का बतलाया गया है?

वैदिक विद्वान – वेदों में एक ही ईश्वर का उल्लेख मिलता है और वह परमेश्वर सच्चिदानंद स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र व इस अखिल ब्रह्मांड को रचने वाला है इसीलिए परमेश्वर को विभिन्न गुण क्रियानुसार विद्वान लोग इसे अनेक नामों से पुकारते हैं।

''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।''

(ऋग्वेद) मध्यकाल के अज्ञानी व पाखंडी लोगों ने वेदवर्णित ईश्वर का स्वरूप न समझकर अथवा जानबूझकर अपनी पेट पूजा रूपी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अलग-अलग भगवानों की कल्पना की जो कि नितांत भ्रममूल व मूर्खतापूर्ण है।

पौराणिक पंडित – आपने इतने सारे नाम एवं मंत्र अवतार के खंडन में दिए, लेकिन यजुर्वेद के 31वें अध्याय के 18 वें मंत्र में जो इस प्रकार है-

''प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्ययोनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।''

स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि वह प्रजापति परमात्मा गर्भ में आता है और जन्म लेकर बहुत प्रकार से प्रकट होता है। अब तो अवतार की बात आप मानेंगे ही।

वैदिक विद्वान – आप ऊपरी सतह और स्थूलता से प्रत्येक मंत्र के अर्थ को देखते हैं। ''प्रजापतिः चरति गर्भे'' इसका सीधा सा अर्थ आपने वह परमात्मा गर्भ में आता है, कर डाला। भगवन्! जो सब जगह पहले से ही व्याप्त है उसका आना और जाना कैसा? जो सब जगह पहले से मौजूद है उसके लिए कोई जगह खाली नहीं है, वह पहले से ही वहां विद्यमान है। ''बहुधा विजायते'' अर्थात् बहुत प्रकार से प्रकट होता है। इसका अर्थ आपने अनेक प्रकार से जन्म लेता है, ऐसा लगा दिया। यही आप लोगों में और हममें फर्क है। हम मंत्रों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं, आप

स्थूल अर्थ करते हैं। यह सृष्टि बहुविध है। वह परमात्मा सर्वव्यापक होकर अपने सामर्थ्य से इस बहुविध सृष्टि को उत्पन्न करता है और आप जिसे जायमान समझ रहे हैं **वह'' अजायमान''शब्द है, जिसका अर्थ है न उत्पन्न होने वाला अर्थात् वह परमात्मा सभी के गर्भों में और हृदयों में विचरण करता हुआ इस बहुविध सृष्टि को उत्पन्न करता है।** उसके सर्वव्यापक स्वरूप को विद्वान ही जान सकते हैं। आप जैसे स्थूल दृष्टि रखने वाले लोग नहीं जान सकते। अतः इस मंत्र से भी अवतार का समर्थन नहीं होता।

पौराणिक पंडित – ठीक है, वेदों में न सही उपनिषदों में तो अवतारवाद का समर्थन व महत्त्व वर्णित होगा?

वैदिक विद्वान – नहीं उपनिषद् तो वेदों के ही व्याख्यान ग्रंथ हैं और इन्हें बहुत ही उच्च कोटि के ऋषि-महर्षियों ने वेद का आधार लेते हुए तथा प्रामाण्य स्वीकारते हुए ग्रंथित किया है, अतः वेद की ही भांति उपनिषद् भी भगवान के अवतार रहित स्वरूप का वर्णन करते हैं।

देखिए, उपनिषदों के ये ''यच्चक्षुषा न पश्यति'' जो आंखों से नहीं देखता, ''यन्मनसा न मनुते'' जो मनन नहीं करता इत्यादि वाक्य उस निर्विकार-परमात्मा के अवतार रहित स्वरूप को अपनी गोद में छिपाए हुए हम देखते हैं।

पौराणिक पंडित – फिर उपनिषदों ने ईश्वर के किस स्वरूप को स्वीकार किया है?

वैदिक विद्वान – वेदों ने ईश्वर के बारे में जो विचार प्रकट किए हैं उन्हीं का विस्तार करते हुए उपनिषदों ने भी ईश्वर के स्वरूप के विषय में विस्तार से वर्णन किया है। उपनिषदों का काल, ज्ञान-ध्यान और ब्रह्म जिज्ञासा का काल रहा है।

''अपाणिपादो जवनोग्रहीतापश्यत्यचक्षुः श्रृणोत्यकर्णः''

–श्वेताश्वतरोपनिषद् 3 अध्याय मंत्र 19

अर्थात् वह ईश्वर हाथ, पैर न होते हुए भी सृष्टि में विचरण करता है। आंख, कान के न होते हुए भी देख-सुन सकता है। यहां कुछ अवतारवादी या जड़ पूजावादी उसके आंख कान होने की बात कहेंगे और वेदों में या उपनिषदों में अवतारवाद या मूर्तिपूजा सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे, परंतु जब तक हम उस मंत्र के पूर्वापर संबंध से युक्त उसका वास्तविक अर्थ क्या है? यह नहीं देखेंगे तो अर्थ गलत लगाकर अपनी पीठ स्वयं थपथपाई जा सकती है।

केनोपनिषद् के प्रथम खंड के तीसरे मंत्र में स्पष्ट कहा है कि

''न तत्रचक्षुर्गच्छिति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो''

–केनो, 1 खं.मंत्र 3

अर्थात् ब्रह्म तो निराकार है। देहरहित अत्यंत सूक्ष्म है न उसे आंख ग्रहण कर सकती है न वाणी, न मन न अन्य इंद्रियां उस तक पहुंच सकती हैं, न हम उसको अपनी अल्पबुद्धि से जान सकते हैं। इस मंत्रार्थ में स्पष्ट रूप से कहा है कि वह इंद्रियागोचर है तो बताईए फिर वह शरीर कैसे धारण कर सकता है? शरीर ईश्वर का हो या मनुष्य का हो वह तो अवश्य दिखाई देगा। उपनिषदों में ऐसे सैकड़ों मंत्र हैं जो यह स्पष्ट रूप से निर्देश करते हैं कि वह देहरहित और निराकार है–

नैव स्त्री न सुमानेष न चैवायं नपुसंकः।

–श्वेताश्वतरोपरिषद्। अ. 5 मंत्र 10

न वह स्त्री न पुरुष और न वह नपुंसक है। अतः उपनिषद् भी अवतारवाद के खिलाफ हैं।

पौराणिक पंडित – क्या गीता अवतारवाद का समर्थन करती है?

वैदिक विद्वान – नहीं, गीता में भी परमात्मा को निराकार, सर्वव्यापक नित्य, अछेद्य बतलाया गया है। अतः गीता अवतारवाद का समर्थन नहीं करती।

पौराणिक पंडित –

''यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

–गीता, अध्याय 4 मंत्र 8

वैदिक विद्वान – सर्व प्रथम इस श्लोक का अर्थ देखिए–''जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की बढ़ोत्तरी होती है, तब-तब मैं धर्मोद्धार के लिए जन्म लेता हूं।'' इस अर्थ में आक्षेप लेने योग्य कुछ भी प्रतीत नहीं होता। एक महापुरुष जहां भी धर्म की हानि होता हुआ देखेगा ऐसा ही कहेगा। **जब फांसी से पूर्व रामप्रसाद बिस्मिल को उनकी अंतिम इच्छा पूछी गई तब उनका उत्तर था कि –''मैं पुनः भारत वर्ष में जन्म लूं और इसे अंग्रेजों से मुक्त कराऊं।''** इस वाक्य में और श्री कृष्ण के वाक्य में कोई अंतर नहीं है। यहां एक और महत्त्वपूर्ण बात है कि **''आत्मानं सृजामि अहम्''** इसी श्लोकार्थ को सामने रखकर अवतारवादी अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। इसका अर्थ होता है, **आत्मानं** = स्वयं

को, सृजामि = निर्माण करता हूं, अहम् = मैं अर्थात् ''मैं स्वयं का निर्माण करता हूं।'' इसके दो अर्थ हो सकते हैं। प्रथम कि ''मैं स्वयं जन्म लेता हूं।'' इसमें हमें कोई परेशानी नहीं है, क्योंकि कोई भी अच्छा व्यक्ति ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है। मैं धर्म के उद्धार के लिए पुनः जन्म लूंगा। इसमें मैं परब्रह्म अथवा परमात्मा हूं ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया है।

दूसरा अर्थ यह होता है कि ''मैं धर्म के उद्धार के लिए स्वयं का निर्माण करता हूं, अर्थात् मैं वैसा प्रयत्न करूंगा। इसमें भी अवतारवाद की पुष्टि नहीं होती ऐसी प्रतिज्ञा आप और हम भी कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति के आधार पर हम सब पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। यही प्रतिज्ञा भगवान् श्रीकृष्ण ने की है।

***पौराणिक पंडित*- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।

इस श्लोक में तो भगवान कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि मैं प्रत्येक युग में अवतार लूंगा।

वैदिक विद्वान - अरे श्रीमन्! आप यहां भूल कर रहे हैं। ये बताईए कि ''मैं अवतार लूंगा'' ऐसा कहां कहा गया है?

पौराणिक पंडित -''**सम्भवामि**'' इस क्रियापद का अर्थ मैं आता हूं या जन्म लेता हूं या जन्म लूंगा। ऐसा नहीं है। प्रथम श्लोक तथा इस श्लोक में अधिक अंतर नहीं है। संपूर्ण श्लोक का अर्थ इस प्रकार है-

''सज्जनों का रक्षण करने एवं दुर्जनों का विनाश करने हेतु तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं प्रत्येक युग में जन्म लूंगा।'' इस श्लोक में भी ''मैं अवतार लूंगा'' (परमेश्वर के रूप में) ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया। यह हम लोगों ने मिलकर ही ऐसा संदर्भ जोड़ा है, अर्थात् अशुद्ध अर्थ के कारण ही सामान्य जनों को भ्रम हुआ है। जो कार्य मनुष्य रूप में हो सकता है उसे ईश्वर रूप में दिखाने की क्या आवश्यकता है? इसीलिए श्रीकृष्ण जी कहते हैं। **''मैं प्रत्येक युग में जन्म लेकर दुष्टों का नाश व सज्जनों का रक्षण करूंगा तथा सत्य धर्म की स्थापना करूंगा।''**

पौराणिक पंडित - भगवान् श्री कृष्ण ने तो गीता में स्पष्ट रूप में फिर इस बात पर अधिक जोर दिया है कि मैं धर्म के उद्धार के लिए समय-समय पर जन्म लेता हूं।

वैदिक विद्वान - यह तो भगवान् श्रीकृष्ण की हार्दिक इच्छा थी कि-

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। *-गीता 4/7*

अर्थात् जब-जब अत्याचार, अनाचार रूप अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं सज्जनों की रक्षा व दुष्टों के विनाश हेतु धर्म की स्थापना करने के लिए जन्म लेता हूं या लूंगा। ऐसी इच्छा तो अनेकानेक देशभक्त व धर्म प्रेमीजनों ने की है। क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल, सुखदेव, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि ने भी यही इच्छा व्यक्त की थी कि हम पुनः-पुनः इस भारत भू पर जन्म लेकर अपने स्वराज्य के लिए अपना प्राणदान देंगे, तो क्या इन क्रांतिकारियों के ये वाक्य अवतार का समर्थन करते हैं?

तथैव, गीता के उपर्युक्त श्लोक का भी अवतार से कोई संबंध नहीं है। श्रीकृष्ण एक महापुरुष थे और उनकी अभिलाषा थी कि तदा+आत्मानम्+सृजामि+अहम्, अर्थात् तब मैं स्वयं का निर्माण करता हूं या जन्म लेता हूं। श्रीकृष्ण जैसी सदिच्छा कोई भी महापुरुष व्यक्त कर सकता है।

पौराणिक पंडित - भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रत्येक युग में अवतार लेने की घोषणा की है। इसे आप असत्य ही कहेंगे क्या?

वैदिक विद्वान - हम उसे असत्य नहीं कहते हैं। इसी श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने धर्मोद्धार के लिए अपनी अभिलाषा व्यक्त की है। ''संभव'' शब्द का अर्थ अवतार नहीं होता, अपितु जन्म लेना या उत्पन्न होना होता है। परमपिता परमेश्वर तो सर्वान्तर्यामी व सर्वशक्तिमान है। वो चाहे तो दुष्टों को कुछ क्षणों में ही समाप्त कर सकता है। इन तृण तुल्य जीवों को दंड देने के लिए उस महिमा मंडित भगवान का जन्म लेना निराधार व बुद्धि विरुद्ध है।

पौराणिक पंडित - क्या वे स्वयं को ईश्वर नहीं मानते थे? 'सृजामि' और 'सम्भवामि' ये क्रियापद उन्होंने स्वयं के लिए क्यों लगाए?

वैदिक विद्वान - भगवान श्रीकृष्ण स्वयं को परब्रह्म परमात्मा कभी नहीं मानते थे। उनके ये वाक्य परमात्मा के निकटतम् एवम् अनन्य साधारण योगी पुरुष होने की वजह से आत्मविश्वास के साथ निकले हुए वचन हैं और वे स्वयं को ईश्वर मानते तो गीता के अंत में यह न कहते कि-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

–गीता 18/61 श्लोक

अथवा

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

–गीता 18/62

यदि वे स्वयम् ईश्वर कहलाते तो ''ईश्वरः सर्वभूतानाम्'' की जगह 'अहम् सर्वभूतानाम्' ''मैं सर्व प्राणियों के हृदय में रहता हूं।' यह कहते और मेरा इससे भी आगे जाकर यह कहना है कि यदि उन्होंने ''**मामेकंशरणं व्रज**'', अर्थात् ''मेरी शरण में आओ'' आदि–आदि कहा है तो यह उनकी परमात्मा से आत्यन्तिक एकरूपता ही हो सकती है। रही बात 'सृजामि' और '**सम्भवामि**' क्रियाओं की तो इन क्रियाओं में उनके जन्म लेने की उत्कृष्ट इच्छा दिखाई देती है, जो समाज, राष्ट्र और धर्म के उत्थान के लिए जरूरी है।

पौराणिक पंडित – ईश्वर जन्म लिए बिना अपनी लीला कैसे दिखा सकता है।

वैदिक विद्वान – लीला दिखाने के लिए शरीर धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो भी अवतार हुए हैं क्या उनसे पहले सृष्टि में अनेकविध क्रियाकलाप नहीं हुआ करते थे? राम, कृष्ण अथवा विष्णु के पूर्व भी सृष्टि थी तथा सर्वव्यापक परमेश्वर अपनी सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्ता से तब से अब तक अपनी विविध लीलाओं का प्रदर्शन करता है। नारियल के अंदर पानी, इमली की खटास, ईख की मिठास, कल–कल करते हुए नदियों का बहना, बिल्कुल उचित समय पर सूर्योदय व सूर्यास्त होना इत्यादि, सब उस ईश्वर की लीलाएं ही तो हैं, अतः वेद कहता है– **विष्णोः कर्माणि पश्यत।** अर्थात् हे मनुष्यों! तुम सर्वव्यापक भगवान के कर्मों का देखो।

वेद उपनिषद् व गीता इत्यादि में वर्णित निराकार भगवान इमली के अंदर रहता हुआ उसके पत्र–पुष्पादि की वृद्धि करता है। गर्भ में व्यापक रहते हुए गर्भ की वृद्धि करता है! बाहर रहकर ये कार्य संभव नहीं है।

पौराणिक पंडित – आप ऐसी कौन सी घटना (लीला) बता सकते हैं जो भक्तों पर संकट आने पर भगवान ने पूरी न की हो?

वैदिक विद्वान – पंडित जी! हम ऐसी सैकड़ों घटनाओं को आपके सामने

रख सकते हैं जिसमें कि संकट में फंसे हुए भक्तों को निकालने के लिए भगवान् को अवतार लेकर आना चाहिए था, लेकिन स्वयं भगवान तो क्या अपने किसी दूत को भी उन्होंने नहीं भेजा।

मुगलों के आक्रमण से भारतवर्ष पर संकट आने प्रारंभ हो गए थे। धर्म के उन्माद से उन्मत्त यवन जब यहां के मंदिरों को ध्वस्त करते और काफिर कहकर हिंदुओं का कत्ल करते तब भगवान का क्या यह कर्त्तव्य नहीं बनता था कि वे अवतार लेकर उन भक्तों को बचाते? ''हिंदी साहित्य का इतिहास'' में डॉ. राजेंद्र शर्मा लिखते हैं कि 'मूर्तियों की अशक्तता (और साथ में अवतारों की) वि. सं. 1081 में बड़ी स्पष्टता से प्रकट हो चुकी थी, जबकि महमूद गजनवी ने आत्मरक्षा से विरत हाथ पर हाथ रखे श्रद्धालुओं के देखते-देखते सोमनाथ का मंदिर नष्ट कर, उनमें से हजारों भक्तों को तलवार के घाट उतारा था और लूट में अपार धन प्राप्त किया था। गजेंद्र की एक ही टेर सुनकर दौड़े आने वाले ग्राह से उसकी रक्षा करने वाले सगुण भगवान जनता के घोर संकट में भी उसकी रक्षा के लिए आते हुए न दिखाई दिए।'' मेरा इस संदर्भ में आपसे यह प्रश्न है कि क्या भगवान सतयुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग में जन्में भक्तों को संकट से बचाने के लिए नहीं आते हैं? यह तो अवतारवाद की मान्यता से विमुख हो जाना है। किसी भी काल में हो भक्तों को संकट से उबारना अवतारवाद की प्रमुख प्रतिज्ञा है। ''बुरे को खुदा डरे'' इस कहावत के अनुसार क्या अवतारी पुरुष मुस्लिम अत्याचारियों या लुटेरों से डरते थे? आप एक घटना की बात कर रहे हैं। मुगलों और यवनों के एक हजार साल के आक्रमण और शासनकाल में राम, विष्णु और कृष्ण के भक्तों पर आए हजारों संकटों में से एक संकट से भी बचाने के लिए भगवान दौड़कर नहीं आए, क्या आप इस ऐतिहासिक तथ्य को झुठला सकते हैं?

पौराणिक पंडित - वेद, उपनिषद् को ऋषि-मुनि व विद्वान ही समझ सकते हैं। आम जनता के लिए सामान्य विचार ही चाहिए।

वैदिक विद्वान - तथ्य व सत्य पर आधारित सिद्धांत अथवा विचार सार्वभौमिक होते हैं न कि व्यक्ति विशेष के लिए मनुष्यों के आधार पर उन सिद्धांतों को विभाजित किया जा सकता। जैसे वेद विद्वानों के लिए हैं वैसे ही सामान्य जन के लिए भी। सामान्य लोग या तो इसे पढ़ना ही नहीं चाहते अथवा उसे जानने का प्रयत्न ही नहीं करते, यह दोष हमारा है न कि वेदादि ग्रंथों या विद्वानों का।

पौराणिक पंडित – आखिर अवतार मानने में दोष क्या है?

वैदिक विद्वान – आप पहले यह बताइए कि अवतार मानने से लाभ क्या है? ऋषि-मुनियों द्वारा बतलाने या बुद्धि पूर्वक सोचने पर यह सर्वथा दोषपूर्ण ही प्रतीत होता है। वह यह कि जो परमेश्वर सर्वदेशी व सर्वज्ञ है, उसे एकदेशी व अल्पज्ञ बनाना कहां की बुद्धिमत्ता है? जो परमेश्वर संपूर्ण सृष्टि का निर्माण कर्ता, पालन कर्ता व संहार कर्ता है उसे राज्य, परिवार चलाने या किसी तुच्छ प्राणी के संहार के लिए शरीर धारण करने की कल्पना क्या उचित है? **जो परमेश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है उसे शरीर धारण कर विभिन्न दु:खों का उपभोग कराने वाली यह धारणा क्या किसी भी प्रकार से उचित प्रतीत होती है? नहीं; नहीं; नहीं। अत: यह स्वत: सिद्ध है कि अवतार मानने में दोष ही दोष है।**

पौराणिक पंडित – अवतार का प्रयोजन यह है कि भगवान् उस स्थिति में जाकर अपनी लीलाएं करते हैं। एक शिक्षक विद्यार्थी की अवस्था में जाकर बालक को पढ़ाए तो वह बालक और अच्छे ढ़ंग से ज्ञान ग्रहण कर सकता है। उसी तरह भगवान मनुष्य की स्थिति में जाकर लीलाएं करते हैं यही अवतार का प्रयोजन है।

वैदिक विद्वान – अवतारवाद का यह आपका थोथा तर्क सुविज्ञ भक्तों और बुद्धिजीवियों के लिए हास्यास्पद लगता है। लीलाओं का प्रयोजन भक्तों के मनोविनोद के लिए हो सकता है, लेकिन समष्टिगत कल्याण के लिए इसका कोई प्रयोजन नहीं है। **लंकापति रावण का वध उस प्रदेश के लोगों के लिए ठीक है अथवा गोवर्धन पर्वत उठाना गोकुल वासियों के लिए उचित है, परंतु संपूर्ण विश्व के लोगों के लिए इसका क्या प्रयोजन?**

दूसरी बात विद्यार्थियों की तरह ईश्वर तत्तद्देशों में जाकर भक्तों में भक्त बनकर तो ईश्वर अपनी लीलाएं प्रकट नहीं कर सकते, सर्व जीवों में व्यापक होकर अपने क्रियाकलापों को प्रकट करना ईश्वर की सहज क्रिया है। इस आसान प्रक्रिया को और कठिन बनाकर पेश करना बुद्धिमत्ता का द्योतक नहीं है। इस विश्व या ब्रह्मांड में केवल मनुष्य ही नहीं रहते महिलाएं, पशु-पक्षी, जीव-जंतुओं की स्थिति में जाकर ईश्वर अपनी क्रियाएं प्रकट करते हैं? शायद शूकर और मत्स्य अवतार के पीछे की परिकल्पना यही हो सकती है (व्यंग्य)।

परब्रह्म परमात्मा ने अन्य जीव जंतुओं की अपेक्षा मनुष्य को प्रज्ञा, मेधा, विवेक, बुद्धि का वरदान दिया है। वह इन्हीं बुद्धियों के द्वारा कर्म करने की व निर्णय लेने

की प्रेरणा देता है। इसीलिए तो **''ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्''** यह गायत्री मंत्र वेदों में गीता से भी पूर्व दिया है। इसमें परमात्मा से सद्बुद्धि के लिए याचना की बात कही गई है। उसे रंगमंच पर आकर अभिनय करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बौद्धिक सामर्थ्य यह ईश्वरप्रदत्त वरदान मनुष्य को सत्कर्म करने के लिए प्रेरणा देता है, न कि बहरूपिए का रूप धारण करना सिखाता है।

पौराणिक पंडित – क्या शरीर धारण करने के पश्चात् अवतारी पुरुष निराकार परमेश्वर के कार्यों को नहीं कर सकता?

वैदिक विद्वान – यह असंभव है। साकार शरीरधारी व्यक्ति निश्चित ही एकदेशीय, अल्पज्ञ व अल्पसामर्थ्ययुक्त होगा और इस सृष्टि में एक साथ विभिन्न स्थानों पर घटनेवाली अनेकविध घटनाओं को गति प्रदान करने के लिए सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान सत्ता की ही आवश्यकता होती है, अतः परमेश्वर के शरीर धारण करने में भी अनेक दोष हैं।

पौराणिक पंडित – पहले आप यह बताइए कि ईश्वर साकार है अथवा निराकार?

वैदिक विद्वान – आप क्या मानते हैं?

पौराणिक पंडित – हम तो साकार व निराकार दोनों ही मानते हैं।

वैदिक विद्वान – अर्थात् आप भगवान् को भी अपने मतलब के अनुरूप ही मानते हैं। अरे भाई साहब, साकार व निराकार दोनों ही परस्पर विरुद्ध गुण हैं। आपके कथनानुसार तो ऐसा ही हुआ जैसे कि अग्नि शीतल भी है और उष्ण भी, लोहा ठोस भी है और द्रव भी। साकार का अर्थ होता है दृश्य पदार्थ, आकारवान् पदार्थ, जो काल, दिशा और परिमाण इत्यादि की सीमा में बांधा जा सके और जो साकार वस्तु होगी उसका संयोग-वियोग भी अवश्यमेव होगा, जबकि निराकार परमेश्वर के गुण इनके सर्वथा विपरीत हैं। जैसे जीवात्मा निराकार होकर भी साकार शरीर के समस्त अंगों में गति देता है। तथैव परमेश्वर भी सृष्टि के अंदर रहता हुआ इसकी प्रत्येक क्रिया संपादित करता है। यह क्रिया चाहे उत्पत्ति, स्थिति या लय किसी भी प्रकार की हो। ऐसी क्रियाएं शरीरधारी कदापि न कर पाएगा।

पौराणिक पंडित – साकार परमेश्वर ही साकार सृष्टि का निर्माण कर सकता है, निराकार नहीं।

वैदिक विद्वान – ऐसा कहना युक्ति-युक्त नहीं है। सृष्टि का अर्थ है-निर्माण और निर्माण की प्रक्रिया हमारे समक्ष ही सतत चलती रहती है। वृक्षों वनस्पतियों व विभिन्न प्राणियों के शरीरों की वृद्धि करने वाला, गुलाब जैसे अनेकानेक पुष्पों की कलियों को विकसित कर सुगंध फैलाने वाला अथवा आकाश में बादल बनाकर वर्षा करने वाला कोई प्रत्यक्ष व्यक्ति है क्या? इसका उत्तर हमें 'नहीं' में मिलता है। फिर आंखों से दिखने वाला परमेश्वर ही सृष्टि रचना में समर्थ हो सकता है, ऐसा आप कैसे कह सकते हैं? साकार देव तो सृष्टि का ही एक नाम है, परंतु परमेश्वर सृष्टि का नाम नहीं, क्योंकि सृष्टि अचेतन है जबकि परमात्मा चेतन व सर्वज्ञ है।

पौराणिक पंडित – क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि संसार की सभी क्रियाएं एवं प्रतिक्रियाएं स्वाभाविक हैं?

वैदिक विद्वान – आपके विचारानुसार ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टि चलाने के लिए परमेश्वर की आवश्यकता ही नहीं है, यह संपूर्ण ब्रह्मांड स्वत: ही संचालित हो रहा है। कुछ लोगों की सोच ऐसी ही है कि सृष्टि पालन के लिए भगवान की कोई आवश्यकता नहीं। (कम्युनिष्ट) यदि आप भी ऐसा ही सोचते हैं तो यह चर्चा व्यर्थ व निरर्थक है।

देखिए, सृष्टि अचेतन है व अचेतन वस्तु में स्वयं कुछ भी करने की शक्ति नहीं होती। इनमें जो गति का हम अनुभव करते हैं वह चेतन तत्त्व का प्रभाव होता है और वह चेतन तत्त्व है परब्रह्मपरमेश्वर और अचेतन वस्तुओं में स्वयं की गति संकल्प-विकल्प अथवा निर्णय की क्षमता का अभाव होता है। **जबकि चेतन निर्णयादि करने में सर्वथा होता है। घड़ी में जो गतिशीलता है वह मनुष्य द्वारा ही दी हुई है। ठीक इसी प्रकार सारे ब्रह्मांड में जो गति दिखाई देती है उसमें परमेश्वर ही निमित्त कारण है।**

पौराणिक पंडित – क्या दुष्टों के नाश के लिए भगवान अवतार नहीं लेता?

वैदिक विद्वान – एक तुच्छ प्राणी के संहार के लिए वह सर्वजगन्नियन्ता, उत्पत्तिकर्ता व संहारकर्ता अवतार लेगा, यह बात कुछ गले नहीं उतरती, क्योंकि नाश करने की अपेक्षा निर्माण करने का कार्य कठिनतर है। जब परमात्मा अव्यक्त रहकर इस विशालतम संसार का निर्माण कर सकता है तो उसका नाश सहज में ही करने का सामर्थ्य भी वह अवश्यमेव रखता है, जो एक क्षण में ही सृष्टि का सर्वनाश कर सकता है उसके लिए कंस, रावणादि तो चीटिंयों से भी तुच्छ हैं।

पौराणिक पंडित – फिर भगवान के अवतार कार्यो को हम कैसे देख सकेंगे?

वैदिक विद्वान – सभी बातें देखी नहीं जाती हैं। सूर्य, चंद्र, तारागण समूह इत्यादि का निर्माण करते हुए क्या किसी ने कभी देखा है? कार्य को देखकर कर्ता का अनुमान किया जा सकता है तथा कुछ बातें अनुभव सिद्ध होती हैं। आप अभी भी ईश्वर के अवतार कार्यों को देख सकते हैं। कल-कल करती हुई नदी का बहना, एक निश्चित् समय पर सूर्य का उदय व अस्त होना, महाप्रलयंकारी भूकम्प, तूफान, सुनामी इत्यादियों का होना, इंद्रधनुष का उदय होकर आकाश को अपने सप्तरंगों से रंगीन बना देना, प्रतिदिन अनेकानेक प्राणियों का जन्म व मृत्यु होना आदि सभी कार्य अवतार (ईश्वर) कार्य ही हैं। इसे आप रोजमर्रा की जिंदगी में देख ही तो रहे हैं।

पौराणिक पंडित – जब तक ईश्वर मनुष्य के रूप में जन्म नहीं लेगा तब तक उसे मनुष्यों के सुख-दु:ख कैसे समझ में आएंगे?

वैदिक विद्वान – भगवान मनुष्यों के तुल्य अल्पज्ञ नहीं है कि वो किसी के सुख-दु:ख को जानने में असमर्थ हो। जो स्वयं ही जीवों के कर्मानुसार सुख-दु:ख रूप फल देता है, उसे जन्म लेकर सुख-दु:ख का अनुभव लेने की क्या आवश्यकता है? वह तो सुख-दु:ख से परे है; त्रिकालाबाधित है, आनंदमय है, अतएव उसे जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है।

पौराणिक पंडित – आप पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर अवतारवाद का विरोध कर रहे हैं।

वैदिक विद्वान – यदि हम पूर्वाग्रह से ग्रस्त होते तो भगवान् राम, श्रीकृष्ण अथवा विष्णु का विरोध करते। **हम तो इन सभी महापुरुषों का गुण-गान करते हैं। उनको हम मानव ही नहीं अपितु महामानव कहते हैं, परंतु उन्हें ईश्वर का स्थान देना अयोग्य है।** इन सभी महापुरुषों ने अपने पुरुषार्थ द्वारा मनुष्य जाति का कल्याण किया है, परंतु हमने अधिक श्रद्धा भाव दिखाते हुए उन्हें परमेश्वर का स्थान दे दिया जो शास्त्रीय दृष्टि से उचित नहीं, शास्त्रों में उसे-

''स एकमेवाद्वितीयम्।'', ''न तत्समश्चाभ्यधिकश्च'' कहा गया है। अर्थात् वह एक ही अद्वितीय है, उसके बराबर अथवा उससे बड़ा कोई नहीं है।

पौराणिक पंडित- जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो गर्भ में भी होगा ही?

वैदिक विद्वान – हम कब कहते हैं कि ईश्वर गर्भ मे नहीं है? सर्वव्यापक होने के कारण वह गर्भ में भी है।

पौराणिक पंडित – हमारा कथन है कि ईश्वर गर्भ में आकर जन्म लेता है?

वैदिक विद्वान – यहीं पर तो हमारा और आपका मतभेद है। वह स्वयं गर्भ में

व्यापक रूप में विद्यमान है। वह गर्भ में स्थित भ्रूण नहीं है, **क्योंकि ईश्वर उत्पत्ति, वृद्धि एवं विनाश इन तीनों विकृतियों में नहीं आता है। गर्भ में उत्पत्ति, वृद्धि एवं विनाश तीनों होते हैं परंतु परमेश्वर आपकी मान्यतानुसार भी अखंड, एकरस एवं निर्विकार है। वह परमात्मा श्रीकृष्ण से पूर्व था, बाद में है और आगे भी रहेगा। उसका अस्तित्व अखंड है, सृष्टि रहे या प्रलय रहे, परंतु परब्रह्म सदैव रहने वाला है।**

पौराणिक पंडित – व्याप्त एवं व्यापकत्व का अर्थ स्पष्ट करें।

वैदिक विद्वान – व्याप्त का अर्थ होता है भौतिक अचेतन वस्तु, जैसे यह सृष्टि अथवा जगत् एवं व्यापक का अर्थ होता है व्यापने वाली वस्तु अर्थात् वह परमेश्वर अकल्पनीय सूक्ष्मता से युक्त है। तभी वह सारी सृष्टि में व्यापक है तथा हमें इस अचेतन सृष्टि में गति नियम एवं क्रम दिखाई देता है। एक उदाहरण देखते हैं– **अनेक पौधे किसी जगह उग आए हैं तो हम कहते हैं, अपने आप ऊग आए होंगे, लेकिन वे ही पौधे अगर एक पंक्ति में दिखाई देते हैं तो हम कहते हैं, किसी ने लगाए होंगे,** क्योंकि क्रमबद्धता एवं नियमानुकूलता होने के कारण हम विचार करते हैं कि इन पौधों को लगाने वाला निश्चित् ही कोई चेतनता से युक्त जीव होगा। उसी प्रकार इस अचेतन सृष्टि की क्रमबद्धता में भी सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ, परमेश्वर का ही वरदहस्त है। तात्पर्य यह हुआ कि परमेश्वर व्याप्य (अवतार या मनुष्य) नहीं हो सकता, व्यापक ही हो सकता है।

पौराणिक पंडित – मान लो परमेश्वर जन्म लेकर चमत्कार दिखाता है, तो इसमें खराबी क्या है?

वैदिक विद्वान – देखिए, परमेश्वर अवतार लेता है, ऐसा किसी भी वेद या आर्ष ग्रंथों में नहीं लिखा है। हां कुछ अप्रामाणिक पुराणादि अनार्ष ग्रंथों में यत्र-तत्र एतद्विषयक चर्चाएं की गई हैं।

दूसरी बात तर्क एवं युक्ति के आधार पर भी आप यह सिद्ध नहीं कर सकते हैं। **अब रही बात चमत्कार दिखाने की तो, इन चमत्कारों को पुराने लोगों ने ही देखा है, फिर चाहे गोवर्धन पर्वत का उठाना हो, हिरण्य कश्यपु को मारना हो या रावण का संहार करना हो, ये कुछ ही लोगों ने देखा है,** परंतु आजकल के लोगों को केवल सुनकर या चित्रों में देखकर ही समाधान मानना होता है। आज भी दुष्टता अपने चरम सीमा पर है। आज भगवान् क्यों नहीं अवतरित होते हैं?

इससे भी आगे जाकर हम कहते हैं कि आज भी हम परमेश्वर के चमत्कारों को देख सकते हैं। तितलियों के हजारों रूप, ग्रह उपग्रहों का गुरुत्वाकर्षण के कारण इस आकाश मंडल में लटकना, क्या यह चमत्कार नहीं है? परंतु जन्म लेने वाला व्यक्ति इस प्रकार के चमत्कार नहीं दिखा सकता है। यदि चमत्कार के कारण ही ईश्वरीय अवतार की सिद्धि होती है तो ताजमहल संसार का सातवां आश्चर्य है फिर तो हमें शाहजहां को भी ईश्वर का अवतार मानना पड़ेगा, एक जादूगर भी चमत्कार करता है। एक छोटे से आम्रवृक्ष को शरद् ऋतु में आम से फलते-फूलते दिखा सकता है। क्या जादूगर को भी अवतार माना जाए? ऐसी अनेक समस्याएं यहां उपस्थित होती हैं। अतः सामान्य या भौतिक चमत्कार तो कोई भी कर सकता है। इनके लिए परमेश्वर को अवतार लेने की आवश्यकता नहीं।

पौराणिक पंडित – अवतारवाद को न मानने वाले घोर नास्तिक हैं, ऐसा हम मानते हैं।

वैदिक विद्वान – परमेश्वर को मानने वाले, परमेश्वर की भक्ति करने वाले, परंतु अवतारवाद को न मानने वाले नास्तिक कैसे हो सकते हैं? वेद, दर्शन, उपनिषद इत्यादि ग्रंथों में अवतार का उल्लेख नहीं है। फिर क्या ये ग्रंथ भी नास्तिक हैं? जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही मानना सच्ची आस्तिकता है। वस्तु के गुणधर्म के विरुद्ध बात को स्वीकार करना ही नास्तिकता है, बल्कि वे ही नास्तिक हैं जो ईश्वर को अवतार मानते हैं, क्योंकि जो जैसा नहीं है वैसा मानना ही नास्तिकता कहलाती है।

पौराणिक पंडित – अवतार के कारण परमेश्वर की प्रत्यक्ष भक्ति की जा सकती है। इस बात को आप कैसे नकार सकते हैं?

वैदिक विद्वान – सारे अवतार पहले हो चुके हैं। कलियुग का अवतार कब होगा पता नहीं। इस समय कोई भी अवतार नहीं है। फिर प्रत्यक्ष अवतारी मनुष्य के भक्ति की बात आप कैसे कर सकते हैं? आप अवतार की नहीं मूर्ति की भक्ति करते हैं। आपकी शंका ही गलत है, आपका प्रश्न ऐसा होना चाहिए कि मूर्ति के कारण भगवान् की पूजा की जा सकती है। फिर मूर्तिपूजा क्यों न करें, परंतु यह विषय अलग है इसका यहां अवतार से संबंध नहीं है।

पौराणिक पंडित – अवतारों के कारण ही लोग भक्ति मार्ग की ओर आकर्षित हुए हैं। क्या आपको ऐसा नहीं लगता?

वैदिक विद्वान – यदि आप रामायण काल या महाभारत काल को देखें जिस

समय अवतार आदि की कल्पना नहीं थी। उस समय भी लोग ईश्वरभक्ति करते थे। ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी, तपस्वी, गृहस्थी सभी ईश्वर की उपासना करते थे। यह इतिहास सत्य है। ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानकर व उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते थे, परंतु जब ईश्वर का सत्य स्वरूप लुप्त हो गया तो अवतार की कल्पना कुछ लोगों ने समाज में प्रचारित की और तब से ही ईश्वर की अंधभक्ति लोगों ने प्रारंभ की। जिसे जिस प्रकार समझ में आया उसने उस प्रकार अवतार की कल्पना करके पूजा प्रारंभ कर दी। तैंतीस कोटि देवताओं की कल्पना इसी की उपज है। हमें तो ऐसा लगता है कि कुछ समय बाद डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर एवं महात्मा गांधी को भी अवतार की श्रेणी में रख दिया जाएगा।

पौराणिक पंडित – आज लाखों लोग श्रीराम, श्रीकृष्ण, विष्णु, शंकर इत्यादि देवों की भक्ति करते हैं, क्या वे सब झूठे हैं? आप ही केवल सच्चे हैं?

वैदिक विद्वान – आप बारंबार वही प्रश्न करते हैं, हमने पहले ही तर्क, युक्ति, शास्त्र आदि प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर अवतार नहीं लेता है। श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि आप्त महापुरुष थे। हमें उनके चरित्र की पूजा करनी चाहिए, चित्रों की नहीं। उन्होंने तो ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया है। **यदि कोई अंगुली से चंद्रमा दिखाता है तो दिखाने वाले को ही चंद्रमा बना दिया जाता है? नहीं-नहीं, आप ही चंद्रमा हैं। इसी प्रकार जिन महापुरुषों ने अनादि ईश्वर को दिखाने का प्रयत्न किया, उन्हें ही परमात्मा बना दिया।** इस प्रकार कुछ धर्माचार्यों ने जनता की जो दिशाभूल की और जड़पूजा की स्थापना की है, वह अक्षम्य है।

पौराणिक पंडित – आपको इन महापुरुषों के अवतार मानने में क्या आपत्ति है? राम, कृष्णादि द्वारा ईश्वर के ही अलौकिक कार्यों को दर्शाया गया है? यह आप क्यों नहीं मानते?

वैदिक विद्वान – श्रीराम एवं श्रीकृष्ण के समय किसी ने उन्हें ईश्वर या अवतार नहीं माना और न घोषित किया, लेकिन उनके पश्चात् उनके लोकोत्तर और मानव जाति के उद्धार के लिए किए गए कार्यों से प्रभावित होकर उनको अवतार में लाकर महिमा मंडित किया गया, यह मानवीय श्रद्धा की स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन यहां बुद्धि और श्रद्धा दोनों को महत्त्व देकर विचार किया जाए तो महापुरुषों का अवतारीकरण नहीं हो सकता। आप देख रहे हैं कि आज अवतारों की बाढ़ सी आ गई है। कोई व्यक्ति यदि कुछ आश्चर्यजनक अलौकिक कार्य करता है या प्रसिद्धि

को प्राप्त होता है तो उसे झट अवतार बना दिया जाता है। यह परंपरा कहां जाकर रुकेगी हम नहीं कह सकते। अत: हमारा कहना है कि ईश्वर को ईश्वर रहने दिया जाए और मानव को मानव बना रहने दें, ईश्वर नहीं।

पौराणिक पंडित – जैसे मनुष्य देवत्व को प्राप्त कर सकता है वैसे ही ईश्वर भी मनुष्य का शरीर धारण कर सकता है।

वैदिक विद्वान – मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है इसका अर्थ वह मनुष्य से ईश्वर नहीं हो सकता। दिव्य गुण धारण करने के कारण ही दिव्यत्व प्राप्त होता है। दया, न्याय, करुणा, अहिंसा, समता इत्यादि गुणों के कारण ही मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है, न कि सृष्टि रचना, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ इत्यादि गुणों को धारण कर सकता है इसलिए मनुष्य व देव, (सद्गुणी, ज्ञानी, सज्जन पुरुष) परमात्मा नहीं बन सकते। हमारे यहां तो ''विद्वांसो हि देवता'' ऐसा कहा गया है। विद्वान, धर्मात्मा को देव कहा गया है। हम कोई अपने से और बड़ा बनना चाहता है छोटा नहीं। अत: मनुष्य, देवत्व को प्राप्त करने की इच्छा रख सकता है, तो परमेश्वर मनुष्य बनने की इच्छा कैसे करेगा। आप ही कहिए, क्या कोई कलेक्टर चपरासी बनना चाहेगा? राष्ट्रपति सरपंच बनना चाहेगा? आप कहेंगे नहीं, तो याद रखिए परमेश्वर भी कभी मनुष्य नहीं बनना चाहेगा और ऐसा करने से वह संसार का क्या भला कर सकेगा? अत: मनुष्य, मनुष्य है और ईश्वर, ईश्वर ही है।

पौराणिक पंडित – जब ईश्वर असंभव को संभव कर सकता है तो अवतार क्यों नहीं ले सकता?

वैदिक विद्वान – ईश्वर किसी भी असंभव कार्य को कर सकता है, यह आपसे किसने कहा? ईश्वर भी सृष्टि नियमों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता, सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, जन्म, मृत्यु, प्राणी जगत् की उत्पत्ति ये सब कार्य बुद्धि अनुकूल विज्ञान सम्मत है। **इनमें ईश्वर भी परिवर्तन नहीं कर सकता है। यदि ऐसा होता तो सूर्य पूर्व को छोड़कर पश्चिम से उदय होने लगता, आम्र वृक्ष पर कद्दू लगने लगते व कद्दू की बेल पर आम लगने लगते, जिस प्रकार न्यायाधीश नियम से युक्त होकर न्याय करता है,** उसी प्रकार परमेश्वर भी अपने ही नियमों के अनुकूल रहकर ही कार्य करता है। अवतार लेना सृष्टि नियम के विरुद्ध होने से परमेश्वर अवतार धारण नहीं कर सकता।

पौराणिक पंडित – अवतार के कारण मनुष्य में अनेक अवगुण आएंगे यह

आप कैसे कह सकते हैं?

वैदिक विद्वान – अवतार की कल्पना के पीछे एकमात्र कारण यह है कि जो कुछ करेगा ईश्वर करेगा। दुष्टों का नाश, धर्म का उद्धार, अधर्म का नाश, सत्युग की पुनर्स्थापना ये सभी परमेश्वर अवतार धारण करके करेगा, ऐसी धारणा सभी अवतारवादियों की है तथा यह कल्पना बुद्धि के अंदर तक घर कर गई है, फिर चाहे द्रोपदी को वस्त्र देना हो या अन्य कोई बात सभी बातें पुरुषार्थहीन समाज की रचना में मदद करती हैं। इससे लोग आलसी, प्रमादी होते हैं। इसलिए अवतारवाद की आवश्यकता बिल्कुल नहीं है।

पौराणिक पंडित – अवतार के बिना भगवान् रावण कंसादि का विनाश कैसे कर सकते हैं।

वैदिक विद्वान – एक ओर तो आप उसे वेदादि का प्रमाण देते हुए सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक सिद्ध करते हैं और दूसरी ओर इन तुच्छ कार्यों के लिए उसके जन्म की आवश्यकता दिखाकर उसके असामर्थ्य को प्रकट करते हैं।

जो ईश्वर अकल्पनीय सीमा वाले इस सकल ब्रह्मांड का संचालन करता है, जिस ब्रह्मांड की तुलना में किसी जीव का शरीर परमाणुवत् है, ऐसे शरीर को तो परमात्मा अत्यंत सहजता से समाप्त कर सकता है।

कंस व रावण को श्रीकृष्ण ने व राम ने मारा, परंतु किसी दुष्ट को हृदयघात होता है तो उसे किसने मारा? यह प्रश्न समुपस्थित होता है। हिटलर स्वयं को गोली मारकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है, उसे किसने मारा?

अत: यह स्पष्ट होता है कि दुष्टों के विनाश हेतु परमेश्वर को शरीर धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण कर अथवा बुद्धिभेद उत्पन्न कर उनका नाश करने में सर्वथा सक्षम है

पौराणिक पंडित – फिर ये अवतार की कल्पना किसने व क्यों की?

वैदिक विद्वान – अवतार की यह कल्पना निश्चित रूपेण किसी चालाक, धूर्तबुद्धि की उपज प्रतीत होती है। जिस प्रकार ईश्वर की मूर्ति की कल्पना की है ठीक उसी प्रकार अवतार की भी कल्पना की गई। मूर्तिपूजा व अवतारवाद की कल्पना एक दूसरे की पूरक हैं। निराकार ईश्वर की प्रतिमा तो हो नहीं सकती, इसलिए कुछ धूर्तो ने सर्वप्रथम राम एवं कृष्ण के अवतार की कल्पना की होगी, जिससे मूर्तिपूजा का प्रारंभ हुआ होगा।

अवतार की कल्पना सर्वप्रथम पुराणों से प्रारंभ हुई। विष्णुपुराण, शिवपुराण तथा भागवतपुराण आदि पुराण ग्रंथों में उन-उन महापुरुषों की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा की गई है, जिससे व्यक्ति महात्म्य बढ़ता गया और उन्हें परमात्मा का अवतार घोषित कर दिया गया।

पौराणिक पंडित - ईश्वरीय अवतार की परिकल्पना से पूर्व किस देवता की उपासना की जाती थी?

वैदिक विद्वान - ईश्वरीय अवतार की परिकल्पना पूर्व मध्य युग की देन है। यह बहुत प्राचीन नहीं है। महाभारत युद्ध के पश्चात् दो हजार वर्ष बाद आई है, यह परिस्थिति सापेक्ष परंपरा है, उससे पूर्व महाभारत अथवा रामायण युग में इसका लेशमात्र भी नहीं था। जहां तक पूर्व वैदिक युग की बात है, यज्ञ, तप, ध्यान आदि उपासना विधियों के द्वारा उस अव्यक्त स्वरूप परमात्मा की उपासना की जाती थी। जड़चेतन देवताओं जैसे बादल (इंद्र) बिजली, सूर्य (सविता), वरुण, पृथ्वी, उषा आदि देवताओं के द्वारा उस सृष्टि में व्याप्त परमात्मा की आहूति और ध्यान द्वारा आवाहन किया जाता था। ''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।। (ऋग्वेद 1/164/46) के मंत्र द्वारा स्पष्ट है कि अग्नि, यम, वरुण, इंद्र आदि प्राकृतिक देवताओं के गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार नाम परमेश्वर के गुण कर्मानुसार होने से ये भी उसी परमात्मा के नाम जानने चाहिए। जैसे इंद्र बादल को भी कहते हैं और ईश्वर को भी, अतः यज्ञ के द्वारा उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का यजन किया जाता है। जिससे कि जड़ देवता भी पुष्ट होते हैं।

उपनिषद् काल में ज्ञान और ध्यान को अधिक महत्त्व प्राप्त था। उस परब्रह्म परमात्मा को ऋषि-मुनि ज्ञान और ध्यान के द्वारा समाधि में उसकी एकरूपता को प्राप्त करने लगे थे। रामायण-महाभारत काल आने तक अध्यात्म कुछ स्थूल होता चला गया, लेकिन इतना अवश्य है कि **महाभारत के 2000-2500 वर्ष तक ईश्वरीय अवतार की कल्पना किसी को स्पर्श नहीं कर सकी थी। जैन और बौद्धों के प्रादुर्भाव के पश्चात् उनकी देखा-देखी यह परंपरा हिंदुओं में भी चल पड़ी, जिसके बाद अध्यात्म की ऐसी दुर्दशा हुई कि कितना भी संभालो, नहीं संभल पा रही है।**

पौराणिक पंडित - वैदिक युग और औपनिषदिक युग का अगम्य ब्रह्म साधारण लोगों की बुद्धि सामर्थ्य से परे होने के कारण ही अवतारवाद का प्रचलन

चल पड़ा होगा, इस तथ्य को आप स्वीकार करेंगे या नहीं ?

वैदिक विद्वान – देखिए, वैदिक काल अथवा औपनिषदिक काल में सौ प्रतिशत जनता ऋषि-मुनि तो थी नहीं, उस समय भी सर्वसाधारण लोग रहे होंगे। समाज का विभाजन इस तरह नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्येक काल में प्रत्येक प्रकार का वर्ग रहा है। देवता और दस्यु, ऋषि और राक्षस, सज्जन और दुर्जन आदि विभेद प्रत्येक काल में रहा है, लेकिन व्यवस्थाएं सभी के लिए समान रही हैं, उसका पालन कोई करता हो अथवा नहीं करता हो। इसी तरह अध्यात्मवाद में भी विद्वानों के लिए अलग मान्यता और साधारण लोगों के लिए अलग मान्यता इस प्रकार का व्यवस्थागत विभाजन यह कोरी कल्पना है और अवतारवाद की उत्पत्ति सहज जात न होकर किसी धूर्त व्यक्ति के दिमाग की कृत्रिम उपज है। रही बात उपासना के सामर्थ्य की। ध्यान, उपासना, यज्ञ आदि कर्म कष्टप्राय: होते ही हैं। जैसे विद्यार्थियों को पढ़ाई कष्टप्रद होती है, उसे लगन और निष्ठा से करना ही पड़ता है। उसी तरह ईश्वर स्तवन का मार्ग भी बड़ी निष्ठा, निश्चयता तथा दृढ़ता से करना पड़ता है। इसके लिए पर्यायी व्यवस्था कोई नहीं, अत: अवतारवाद का मार्ग साधारण लोगों के लिए खोज निकाला गया हो यह सही नहीं है।

पौराणिक पंडित – डारविन के विकासवाद की तरह अवतारवाद भी आध्यात्मिक विकासवाद की एक कड़ी है। इस रूप में अवतारवाद को आप क्यों नहीं लेते ?

वैदिक विद्वान – **भौतिक एवं सृष्टि के विकास का संबंध डारविन के विकासवाद से है। प्राणी उत्पत्ति एवं सृष्टि रचना के संदर्भ में प्रत्यक्ष प्रमाणों के द्वारा विकासवाद कुछ बातें स्पष्ट करता है, परंतु ज्ञान, ध्यान और अध्यात्म के बारे में उसी विकासवाद को लागू करना उचित नहीं है।** प्राचीनकाल में अध्यात्म अपनी चरम सीमा पर था। आध्यात्मिक ज्ञान अपने उच्च शिखर पर था, अन्यथा इतने महान आध्यात्मिक ग्रंथों की रचना नहीं हो पाती। उस समय का आत्मज्ञानी व्यक्ति अंतर्मुखी था, आज का व्यक्ति बहिर्मुखी है। अत: आध्यात्मिकता का विकास आधुनिक काल में नहीं हुआ, प्रत्युत-पतन ही हुआ है। ज्ञान का विकास नहीं हुआ करता, ज्ञान ग्रहण करने की क्षमताओं का विकास हुआ करता है। ज्ञान एकरस और अखंड है, उसको आत्मसात् करना मनुष्य की क्षमता और सामर्थ्य के अंतर्गत है। यह किसी भी काल का मनुष्य कर सकता है और रही अवतारवाद को

विकास की संज्ञा देना, अवतारवाद शिखर न होकर एक खाई है जो आध्यात्मिकता को निचले स्तर तक ले-जाती है, इसे हम विकास कैसे कहेंगे? क्या इसमें गूढ़ता है या सूक्ष्मता है अथवा आत्मकल्याण का चरमोत्कर्ष है? यह तो एक ईश्वर के स्वरूप का निकृष्टतम रूप है।

जैसे विदेशी वेद भाष्यकारों द्वारा सर्वव्यापक चेतन ईश्वरीय कल्पना को जड़ देवतावाद का विकास कहना अथवा एकेश्वरवाद, बहुदेवतावाद भी एक विकासवाद की कड़ी है, यह कहना, विकासवाद को न समझने जैसा है, अत: निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि अवतारवाद अध्यात्म के विकास की कड़ी नहीं है, बल्कि खाई है।

पौराणिक पंडित - अवतार की संकल्पना के पीछे किसका क्या स्वार्थ हो सकता है?

वैदिक विद्वान - अध्यात्म के क्षेत्र में अवतारवाद की संकल्पना विचित्र सी है। महाभारत काल तक उपासना का एक ही मार्ग ध्यान, ज्ञान, यज्ञ, योग आदि ही था, लेकिन महाभारत के पश्चात् धार्मिक बुराईयों का बोलबाला शुरू हो गया। असीम कर्मकांड का प्रचलन, यज्ञ में पशुहिंसा अनेक कुंडी यज्ञों का आडंबर आदि अनाचार धर्म के नाम पर शुरू हो गए। कर्मकांडी ब्राह्मणों को इस रहस्य का पता चल गया कि यज्ञ. कर्मकांड, स्वर्ग-नरक अंधश्रद्धा आदि के नाम पर जनता को बहकाया जा सकता है और उन्हें लूटा जा सकता है। चार्वाक, जैन और बौद्धों ने ब्राह्मण वर्ग एवं पुरोहित वर्ग का बड़ी कठोरता के साथ विरोध किया। **चार्वाक ने यहां तक कहा कि यज्ञ में भेड़, बकरी की आहुति देने से यदि भेड़ बकरी स्वर्ग जा सकती है तो तुम्हें यज्ञ में डालने पर तुम स्वर्ग में क्यों नहीं जा सकते?** तुम्हारे नाम पर दूसरों ने किया हुआ भोजन तुम्हें मिलना चाहिए, क्योंकि श्रद्धा का यही उद्देश्य है आदि।

अत: यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि अवतार के नाम पर यथेच्छ उदर. निर्वाह और नि:सीम स्वार्थ को सामने रखकर, कर्मकांडी धूर्त ब्राह्मण, पुजारी और पुरोहितों ने इस कुपरंपरा को चलाया।

पौराणिक पंडित - क्या वेदों के देवतावाद से अवतारवाद का अवतरण नहीं हुआ?

वैदिक विद्वान - हमें नहीं लगता कि सूर्य, चंद्र, इंद्र, बिजली, ऊषा, पृथ्वी,

वायु आदि जड़ देवताओं के कारण अवतार की परिकल्पना मनुष्य की बुद्धि में आई होगी। वस्तुत: ये उपर्युक्त सभी जड़देवता हैं न कि चेतन देवता और वेदों में इनके सदुपयोग और यज्ञ के द्वारा आहुति देकर शुद्धिकरण की परंपरा का निर्वहन किया गया है। **'यः ददाति स देवता'** जो देता है उसे देवता कहते हैं, जो देने वाले के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है उसे ही यज्ञ द्वारा आहुति देकर पूरा किया जाता है न कि आज की तरह पूजा अर्चना की जाती है।

जिस तरह व्यवहार में हम देखते हैं कि कोई किसी प्यासे को पानी पिलाता है तो वह उसको धन्यवाद देता है। उसी तरह वेदों के प्राकृतिक देवता मनुष्यमात्र पर उपकार करते हैं। तब उन्हें यज्ञ के माध्यम से परमात्मा हेतु आहुति देकर धन्यवाद प्रकट किया जाता है। बस यही वेदों का देवतावाद है।

दूसरी बात ये सभी देवता जड़ हैं और अवतार में शर्त यह है कि अवतार किसी सजीव मानव का हो जो दुष्टों का संहार कर सके, अत: वेदों के देवतावाद से अवतारवाद का कोई संबंध प्रतीत नहीं होता।

पौराणिक पंडित - फिर वेद और उपनिषद् काल में किसकी और कैसे उपासना की जाती थी?

वैदिक विद्वान - वेद और उपनिषद् काल में निराकार सर्वशक्तिमान् ईश्वर की ही उपासना की जाती थी। ऋषि-मुनि और योगी उस परमतत्त्व की स्वअन्त:करण में ही ध्यान के द्वारा उपासना करते थे, न कि आज की तरह जड़मूर्ति की किसी मठ मंदिर में जाकर पूजा करते थे, अत: वैदिक एवं औपनिषदादिक काल में जड़ पूजा अथवा अवतार स्तवन का सर्वथा अभाव था।

यदि वेदों में सावयव ईश्वर की बात कही गई होती तो वहां यह मंत्र नहीं आता-

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपाप विद्धम्

-यजु: 40/7

वह परमात्मा चारों तरफ से तेजोमय, अकायम् अर्थात् शरीर रहित व्रण, जख्म रहित तथा स्नायु रहित विशुद्ध एवम् अत्यंत पवित्र है।

इसी अध्याय के 5 वें मंत्र में कहा है कि-

तदेजति तन्नैजतितद्दूरेतद्वन्तिके।

अर्थात् वह परमेश्वर संपूर्ण ब्रह्मांड को चलाता है, लेकिन स्वयं नहीं चलता। वह अत्यंत निकट भी है और दुष्टों के लिए दूर भी है।

और भी ऐसे सैकड़ों मंत्र हैं जिनसे ईश्वर सावयव न होकर निराकार अव्यक्त और इंद्रियातीत है जैसे कि इस मंत्र में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है–

सर्वेनिमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्व न तिर्यञ्च मध्ये परिजग्रभत्।।

–यजु. 32/2

अर्थात् इस पर ब्रह्म परमात्मा को ऊपर, नीचे, टेढ़ा, तिरछा, मध्य भाग अथवा कहीं से भी वह नहीं पकड़ा जा सकता। देखिए इतना, स्पष्ट निःसंदेह ईश्वरीय स्वरूप कोई विद्वान् क्या रख सकेगा। परमेश्वर के निराकारत्व में यत्किंचित् भी गुंजाइश नहीं है कि उस परमात्मा में सकारत्व की भावना मनुष्य करे।

जब वेदों ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि ईश्वर साकार स्वरूप को धारण नहीं करता तो वेदों में अवतार की बात कैसे आएगी।

पौराणिक पंडित – अवतारवाद की पृष्ठभूमि क्या हो सकती है?

वैदिक प्रवक्ता – देखिए, इससे पूर्व कहा गया है कि महाभारत के बाद ढाई हज़ार वर्ष तक भारत में धार्मिक, राजनैतिक अस्थिरता का समय रहा है। विद्वान, ज्ञानी, ध्यानी, योगी और धर्मधुरंधर महाभारत के युद्ध में मारे गए तथा जो बचे थे भगोड़े धूर्त और अज्ञानी थे। वेदों व उपनिषदों का ज्ञानमार्ग समाप्त हो चुका था और भक्तिमार्ग प्रारंभ हो गया था। भक्ति मे लोग इतने तल्लीन हो गए कि उन्हें अपनी राजनैतिक ताकत और सामाजिक संगठन का ध्यान ही नहीं रहा। पुराणों की रचना हुई। जिसके मन में जो आता, वह अपनी मर्जी से धर्म और ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या करता और इसी कारण धार्मिक बिखराव आता चला गया। लोग अपनी सोच को अधिक महत्त्व देने लगे और समाज पर थोपने लगे। ढ़ाई हज़ार वर्षो तक यही सिलसिला चलता रहा।

पौराणिक पंडित – आपके इस अस्थिरता और सामाजिक बिखराव से अवतारवाद का क्या संबंध है?

वैदिक विद्वान – मैं आगे चलकर यही तो बतलाना चाहता हूं कि धूर्त पंडितमान्यों के दिमागों में अवतारवाद की उपज कैसे हुई। देश में भक्तिधारा की लहरें चलने लगीं। संपूर्ण हिंदू समाज भक्ति के झूले में झूलने लगा और जहां ज्ञान, जिज्ञासा और सत्याचार का लोप हो जाता है। वहां सस्ती मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न होती है। **ज्ञान की जगह कर्मकांड हावी होता चला गया। कर्मकांड इतना हावी हो गया**

कि वह शोषण का साधन बन गया। उसमें अनेक नाना प्रकार की विकृतियां आने लगीं। यज्ञों में पशुहिंसा, अनाचार आदि का प्रादुर्भाव होता चला गया और इसके विरोध में महात्मा बुद्ध और महावीर को विद्रोह करना पड़ा। हिंदूमत क्षीण होता चला गया और बौद्धमत का संपूर्ण एशिया में प्रसार होता चला गया।

पौराणिक पंडित – बौद्धमत का फैलाव एक दृष्टि से अच्छा ही हुआ इससे हिंदूमत की क्या हानि हुई?

वैदिक विद्वान – हानि कैसे नहीं हुई? भले ही आज यह मानते हों कि बौद्धमत हिंदूमत का एक अंग है, लेकिन उस समय वह अंग न होकर हिंदूमत के ह्रास का कारण बना। दूसरी बात बौद्ध निरीश्वरवादी मत होने से हिंदूमत का विरोधी माना गया, जब संपूर्ण हिंदू समाज बौद्धमत की ओर अग्रसर होता चला गया तो हिंदू धर्माचार्यो का निराश होना स्वाभाविक था।

अब धूर्त धर्माचार्यो ने लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए नई-नई युक्तियां निकाली, जिनमें दो महत्त्वपूर्ण थीं, एक ईश्वर का अवतार और दूसरी मूर्तिपूजा।

पौराणिक पंडित – आप मूर्तिपूजा और अवतारवाद को दोष दे रहे हैं, लेकिन आदि शंकराचार्य ने बौद्धों को रोकने का बड़ा कार्य इन्हीं भक्ति भावना से किया है।

वैदिक विद्वान – यह सत्य है कि आदि शंकराचार्य ने बौद्धमत के तूफान को रोकने का बहुत बड़ा कार्य किया है। उन्होंने बौद्धों के 'शून्यवाद' को 'मायावाद' का आवरण चढ़ाकर उसीके द्वारा बौद्धों को परास्त किया, लेकिन क्या जगद्गुरु शंकराचार्य का 'मायावाद' मिथ्यावाद अथवा अद्वैतवाद हिंदूसमाज आत्मसात् कर सकता था? नहीं, कदापि नहीं? अतः शास्त्रीय दृष्टि से वेदांतदर्शन के परिपुष्ट अद्वैतवाद को परोक्ष रूप में रखकर प्रतीक रूप में अवतारवाद, मूर्तिपूजा तथा ईश्वर के साकार रूवरूप का समर्थन किया गया। जिस तरह वेदों के ऋषियों ने तथा आधुनिक काल में महर्षि दयानंद ने आध्यात्मिक आदर्शो को स्थूल व्यवहार में लाने की अनुमति नहीं दी। **इस तरह का कार्य आदि शंकराचार्य ने बड़ी दृढ़ता के साथ नहीं किया। यदि वे वेदांत के सिद्धांतों को स्थूल धार्मिकता में लाने का विरोध करते तो शायद यह निश्चित था कि इन महापुरुषों को अवतार और मूर्तियों के दायरे में नहीं लाया जा सकता था।**

पौराणिक पंडित – राम, विष्णु, कृष्णादि के नाम स्मरण से ईश्वर का ही

ध्यान होता है। जैसे आप वैदिक जड़ देवताओं के स्तवन से चेतन परमात्मा की स्तुति होती है, इस प्रकार का सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं, उसी तरह अवतारों (लोकोत्तर पुरुष) के माध्यम से उस परब्रह्म परमात्मा की ही आराधना होती है, यह सिद्धांत क्यों नहीं स्वीकार करते?

वैदिक विद्वान - देखिए, वैदिक काल में एक तो जड़ देवता की पूजा होती ही नहीं थी। अपितु यज्ञ के द्वारा उन देवताओं को (प्राकृतिक शक्तियों) शुद्ध और सक्रिय बनाए रखने के लिए मंत्रों द्वारा आहुतियां दी जाती थीं। प्रारंभ में देवतावाद के विषय में मनुष्य कौतूहलयुक्त रहा ही होगा और प्रकृति में उसे दिव्यशक्ति का आभास और अनुभव भी हुआ होगा। वेद मंत्रों में उस तरह का अर्थ भी प्रकट किया गया है कि उस प्राकृतिक पदार्थों के पीछे कोई दिव्य अलौकिक शक्ति है, उस अंतिम दिव्यशक्ति के स्तवन और प्राकृतिक पदार्थों को (जड़ देवताओं की) विशुद्ध विमल ऊर्जायुक्त बनाने के लिए यज्ञ के द्वारा हवि दी जाती थी। लेकिन धूपदीप, नैवेद्य, कुंकुम, तिलक आदि से षोडशोपचार पूजा नहीं की जाती थी। यज्ञ, संध्या के पीछे यही तो रहस्य है। दुनिया में स्तवन की यह एकमेव पद्धति है जो स्वकल्याण के साथ समष्टि कल्याण की बात कहती हो, वह है- यज्ञ पद्धति। बाद में स्वार्थी, कर्मकांडी, ब्राह्मण वृत्ति ने इसमें पशुहिंसा जैसी विकृतियां पैदा कर दीं, किंतु यह अलग विषय है। लेकिन यज्ञ के अतिरिक्त जड़देवताओं की पूजा वेदों में निषिद्ध है। अब इसे आप राम, विष्णु कृष्णादि को साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मानकर उनकी पूजा अर्चनादि करते हैं, जो अशास्त्रीय है। जो निराकार है, उसे निराकार अवस्था में ही स्तवन किया जाना चाहिए। जो देहधारी हैं उनका उनकी योग्यतानुसार सत्कार किया जाना चाहिए। यही तो वैदिक विचारधारा है। **''अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्याश्चैव निरादरः''** के अनुसार निराकार सर्वशक्तिमान ब्रह्म का ध्यान बिना मध्यस्थ के किया जाना चाहिए अन्यथा मुहम्मद, पैगंबर, ईसामसीह की तरह रामकृष्णादि को मध्यस्थ मानकर सच्चे परमात्मा से हमें वंचित रहना पड़ेगा।

पौराणिक पंडित - परमात्मा को गीता में अज् (अजन्मा) कहा गया है, अवतार जन्म लेकर भी अजन्मा रहता है। अर्थात् श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि मैं जन्म लेकर अजन्मा हूं। क्या आप गीता के इस मंतव्य से सहमत नहीं हैं?

वैदिक विद्वान - गीता में भगवान् (ऐश्वर्यवान) श्रीकृष्ण जी कहते हैं -**'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामश्विरोऽपि सन्''।**

–गीता 4/6

इस श्लोकार्थ में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि यद्यपि मैं अनादि हूं, इसलिए अजन्मा हूं तथा नित्य एक रस रहने वाला जीवात्मा हूं। जहां तक जीवात्मा और परमात्मा के स्वाभाविक गुण कर्म स्वभाव हैं, वे अधिकांश रूप में समान हैं। जीवात्मा स्वयं पैदा नहीं होता शरीर पैदा होता है। जीवात्मा अनादि–अनंत इस गुण से अखंड है। जन्म–मरण के द्वारा वह कभी खंडित नहीं होता और आप जानते ही हैं कि योगिराज श्रीकृष्ण जी ने बारह वर्ष तक तपस्या की थी, अतः वे योग के द्वारा मुक्त आत्मा थे। शरीर तो उनके लिए निमित्तमात्र था वे परमात्मा के साथ अखंड एकरस होकर विचरते थे। वेदांत दर्शन में जिस तरह ''अहं ब्रह्मास्मि्'' ''जीवोब्रह्मैव नापरः'' ''अयमात्मा ब्रह्म'' आदि तादात्म्य वाचक सूत्रों से योगानुभूत जीवात्मा यह कहे कि मैं परमात्मा की तरह अनादि, अनंत, अजन्मा हूं, तो इसमें कोई आश्चर्य या सिद्धांत विरुद्ध बात नहीं समझनी चाहिए। जैसे कोई दंपत्ति आपस में कहें कि हमारे शरीर निमित्त मात्र अलग हैं, हम एक ही हैं, अलग–अलग नहीं हैं। इसी तरह यहां कोई साधारण व्यक्ति नहीं कह रहा कि मैं जन्म लेकर भी अजन्मा हूं। एक योगिराज और जिसने समाधि में आत्मा और परमात्मा का एकत्व अनुभव किया है, वह कह रहा है। हमारा तो विरोध आपसे यह है कि जन्म लेकर इस शरीर द्वारा वह ब्रह्मसदृश क्रियाएं करता है इसके लिए है– ''**पूज्यानां च निरादरः**'' इस श्लोक में आत्मा और परमात्मा के अज् इस गुण को महत्त्व दिया गया है न कि शरीर को।

पौराणिक पंडित – वेदों ने परमात्मा को (अकायम्) शरीर रहित कहा है। लेकिन वही देह रहित परमात्मा–जगत् के कल्याण के लिए अनेक अनित्य देह–धारण कर सकता है। इसलिए गीता के चौथे अध्याय के पांचवें श्लोक में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

बहूनि में व्यतितानि जन्मानि तवचार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।

–गीता अ.4 श्लोक 5

अर्थात्, हे अर्जुन मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म हुए हैं, उनको मैं जानता हूं, लेकिन तुम नहीं जानते।

श्रीकृष्ण इतने विश्वास के साथ कहते हैं, क्या वह असत्य प्रतीत होता है?

वैदिक विद्वान – योगिराज श्रीकृष्ण मुक्तात्मा थे, वह आप भी जानते हैं और हम भी! मुक्तात्मा स्वयं के जन्म-जन्मांतरों को जानता है। यह बात गीता और वेदादि सत्यशास्त्रों से विदित है, लेकिन यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या भगवान श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा थे? और परब्रह्म होकर शरीर धारण करते हैं। यदि आप योगीराज कृष्ण को परमात्मा मानकर शरीर धारी कहना चाहते हैं तो यह शास्त्र विरुद्ध है और सत्य से परे है।

उन्होंने स्वयं के पिछले जन्मों का स्मरण कराया यह बात भी सही है, लेकिन ये सारे जन्म उन्होंने ईश्वर होकर लिए हैं यह कहना वेद विरुद्ध है। उनकी इस बात से यही सिद्ध होता है कि योगिराज श्रीकृष्ण ने मानव होकर ही जन्म लिए हैं। इस बारे में वे स्वयं कहते हैं कि इससे पूर्व मेरे अनेक जन्म हुए हैं, जिनको मैं जानता हूं। योगी मुक्तात्मा शरीर होकर भी परमात्मा के असीम ज्ञान और आनंद का उपभोग कर सकता है। यहां यह बात भी सिद्ध होती है कि मनुष्य का पुनर्जन्म है।

पौराणिक पंडित – महाशय जी। परमात्मा अशरीरी होकर भी अनेक अनित्य देह धारण करता है, इस बारे में एक और वेद का मंत्र आपको प्रस्तुत करता हूं। यजुर्वेद के 31वें अध्याय के 19वें मंत्र में स्पष्ट रूप से कहा है कि वह बहुत प्रकार से विविध रूप धारण कर उत्पन्न होता है। सुनिए-

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजाय मानो बहुधा विजायते,
तस्य योनि परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।

-यजु अ. 31 मन्त्र 19

अर्थात्, वह परमात्मा गर्भ में विचरण करके बहुत प्रकार से उत्पन्न होता है। मंत्र के पूर्वार्ध में स्पष्ट कहा गया है कि वह गर्भ में आकर अनेक प्रकार के जन्म लेता है। आप वेद के इस प्रमाण को भी मानेंगे कि नहीं?

वैदिक विद्वान – हम इस वेद मंत्र को क्यों नहीं मानेंगे? पर अवतार के पक्ष में इसे प्रमाण नहीं मान सकते, क्योंकि आप इसका विपरीत अर्थ कर अवतार की पुष्टि के लिए प्रयुक्त कर रहे हैं। आप जिस शब्द को 'जायमान' बतला रहे हैं। सुनिए इस मंत्रार्थ का अर्थ वह (अजायमानः) अपने स्वभाव से उत्पन्न न होने वाला (प्रजापति) प्रजा का रक्षक (गर्भेः) गर्भस्थ जीवात्मा और उसके (अंतः) हृदय में (चरति) विचरण करता है और बहुत प्रकार से (विजायते) विशेष प्रकार से व्यापक होकर प्रकट होता है।

भावार्थ :– अर्थात् वह सर्वरक्षक ईश्वर अपने स्वभाव से उत्पन्न न होता हुआ, अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर उसमें व्याप्त होकर सर्वत्र विचरता है। ऐसे ईश्वर को विद्वान लोग ही जानते हैं। उसके स्वरूप को आत्मज्ञानी योगी ही पहचानते हैं, उसी में सब लोक लोकांतर स्थित हैं। अब आप ही बतलाइए यहां ईश्वर शरीर धारण कर जन्म लेता है, ऐसा कहां लिखा है?

आप पौराणिक युग की गलत धारणाओं को वेदों से सिद्ध करना चाहते हैं, जो असंभव है। **वेदों में तो शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान और निराकार ईश्वर के स्वरूप को ही देखा जा सकता है। वैदिक काल में न मठ मंदिर न मूर्तिपूजा न अवतार का नामो निशान था। आपको एक ही नहीं ऐसे सैकड़ों वेद मंत्र मिलेंगे जिनमें ईश्वर के निराकार और अत्यंत शुद्ध स्वरूप को दर्शाया गया है।**

पौराणिक पंडित –वेदों को हम भी ज्ञान, विज्ञान के ग्रंथ मानते हैं। हिंदू मान्यताओं के प्रमाण ग्रंथ जानते हैं। इन्हीं मान्यताओं के अंतर्गत ईश्वर अवतार ग्रहण करता है, यह मान्यता भी प्राचीन काल से चली आ रही है। इससे आप इंकार कर रहे हैं। एक और वेद का प्रमाण आपके सामने प्रस्तुत है, जिससे ईश्वर देह धारण कर अनेक रूपों में प्रकट होता है–

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरु रूपं ईयते युक्ता ह्यस्यः हरयः शतादशम्।।

–ऋग्वेद मं. 6/सूक्त 47 मंत्र 18

इस मंत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वह नित्य निराकार परमेश्वर एक रूप से अनेक रूपों को प्राप्त करता है। अर्थात् देह धारण करने का स्वभाव न होते हुए भी माया के द्वारा विविध रूपों को वह परमात्मा धारण कर अपनी लीलाओं को प्रकट करता है। क्या यह वेद का मंत्र ईश्वर के अवतार ग्रहण करने में पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं?

वैदिक विद्वान – आपके इस मंत्रार्थ से वेदों पर ''वदतो व्याघात्'' का दोषारोपण हो सकता है। एक ओर तो आप कहते हैं कि वह अशरीरी, नित्य, निराकार और सर्वव्यापक है और दूसरी ओर इसके विपरीत उसे एकदेशी, अनित्य और साकार बतला रहे हैं। यह आपकी कैसी मान्यता है? स्वयं वेद उच्चस्वर में कह रहे हैं कि **''नत्वा वां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते''** अर्थात् उस परमात्मा जैसा अन्य कोई दिव्य देदिप्यमान नहीं है, न वह जड़ पदार्थ है और न कभी पैदा

होगा। **इतना स्पष्ट रूप से ईश्वर के देह धारण का खंडन इस मंत्र में आया है फिर आप कैसे कहते हैं कि वह अनेक देह धारण कर अपने अनेक रूपों को प्रकट करता है?**

''रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'' इस मंत्र का अर्थ ईश्वर परक न होकर जीवात्मा परक है।

यहां 'इंद्र' परमात्मा का द्योतक नहीं अपितु जीवात्मा का द्योतक है। महर्षि दयानंद कृत मंत्रार्थ देखिए-(इंद्रः) जीव (मायाभिः) बुद्धियों से (प्रतिचक्षणाय) प्रत्यक्ष कथन के लिए (रूपंरूपम्) रूप रूप के (प्रतिरूपः) प्रतिरूप अर्थात् उसके रूप रूप से वर्तमान (बभूवः) होता है और (पुरुरूपः) बहुत शरीर धारण करने से अनेक प्रकार का (ईयते) पाया जाता है। (तत्) वह (अस्य) इस शरीर का (रूपम्) रूप है और जिस (अस्य) इस जीवात्मा के (हि) निश्चय करके (दश) दस संख्या के विशिष्ट घोड़ों के समान इंद्रिय, अंतःकरण और प्राण (युक्तः) युक्त हुए शरीर को धारण करते हैं। वह इसका सामर्थ्य है।

भावार्थ - हे मनुष्यों, जैसे बिजली अलग-अलग पदार्थ के प्रति तद्रूप होती है, वैसे ही जीव अलग-अलग शरीर के प्रति तत्स्वभाव वाला होता है, जब बाह्य विषय के देखने की इच्छा करता है, तब उसको देखकर तत्स्वरूप ज्ञान इस जीव को होता है और जो जीव के शरीर में बिजली के सहित असंख्य नाड़ी हैं, उन नाड़ियों से यह सब शरीर के समाचार को जानता है।

आप अवतारवाद की मान्यता को मनवाने के लिए अनेक गलत युक्ति प्रयुक्तियों का प्रयोग कर रहे हैं। उसके लिए वेदमंत्रों के अर्थों को भी अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्तित कर रहे हैं। निरुक्तादि ग्रंथों के अनुसार इंद्र, परमात्मा और जीवात्मा दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है, लेकिन मंत्र के केंद्रीय विषय को ध्यान में रखकर उन शब्दों के अर्थों द्वारा मंत्रों का अर्थ किया जाना जरूरी है और यही ऋषि परंपरा आदि काल से चली आ रही है। लेकिन दुर्भाग्य इस बात का है कि मध्यकाल की पौराणिक मान्यताओं को सिद्ध करने के लिए वेदों का उपयोग आज के पौराणिक कर रहे हैं। वे वैदिक कालीन मंत्रों का अर्थ आज के लौकिक संस्कृत शब्दों के अर्थों से कर रहे हैं। इस प्रवृत्ति का भंडा फोड सर्व प्रथम महर्षि दयानंद सरस्वती ने किया। उनसे पूर्व इस तरह की आर्ष प्रणाली का प्रचलन महाभारत काल के पश्चात् अब तक किसी ने नहीं किया। ऐसे अर्थ आज की लौकिक (व्यावहारिक) संस्कृत

भाषा के माध्यम से करना वैदिक काल की ऋचाओं के साथ न्याय नहीं हो सकता। आप इस तरह वेद मंत्रों के अवैदिक अर्थ करेंगे अथवा उनको तोड़-मरोड़कर अपनी इच्छानुकूल भाष्य करेंगे तो वेदरूपी ज्ञान-विज्ञान के भंडार नष्ट हो जाएंगे।

पौराणिक पंडित – आप संपूर्ण पौराणिक जगत् पर आरोप लगा रहे हैं। पौराणिक विद्वानों ने तो हिंदू धर्म, वेद, उपनिषद् और वैदिक संस्कृति को समृद्ध करने के लिए अवतारवाद जैसी मान्यताओं को स्वीकार किया है। अवतारवाद एवं मूर्तिपूजा जैसी मान्यताओं से ही सारा समाज हिंदू धर्म का अनुयाई हुआ है और हो रहा है। इसलिए हमारी ऐसी मान्यता है कि ईश्वर निराकार रहते हुए भी देहधारण करता है। वह माया के द्वारा यह सारी लीलाएं करता है। माया अनित्य देह का भ्रम उत्पन्न कराती है। वास्तव में ईश्वर निरयव होते हुए भी शरीर धारण करने का भ्रम स्वयं करता है और उसी भासमान शरीर से दुष्टों का नाश एवं सज्जनों का रक्षण भी करता है।

वैदिक विद्वान – आप फिर अपने युक्तिवाद से स्वयं की प्रतिज्ञा को भंग कर रहे हैं। माया का एक अर्थ भ्रम है और उसी भ्रम का सहारा लेकर सत्य पर असत्य का आवरण चढ़ा रहे हैं। ईश्वर को मायाजाल में फंसाकर सामान्य लोगों की दिशाभूल कर रहे हैं यह अध्यात्म की दृष्टि से उचित नहीं है। और दूसरी बात यह है कि आप सत्य स्वरूप परब्रह्म पर माया का हावी होना सिद्ध कर रहे हैं। जो नित्य, शाश्वत्, निराकार और सर्वशक्तिमान है, उस पर यदि माया का वर्चस्व हो जाए तो परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय गुण नष्ट हो जाएंगे, यह तो ऐसे होगा जैसे इस्लाम में खुदा से बढ़कर उसके कामों में दखल देने वाला कौन है? तो वह शैतान है। इस्लाम का शैतान और पौराणिकों की माया इसमें कोई अंतर नहीं रह जाएगा और इस प्रकार ईश्वर सृष्टि का स्वामी न होकर माया के पराधीन हो जाएगा।

पौराणिक पंडित – माया परमात्मा पर हावी होगी, यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण होगा। परमात्मा सृष्टि में स्थित सभी तत्वों का उपयोग सृष्टि एवं प्राणिमात्र के कल्याण के लिए कर सकता है तो क्या परमात्मा प्रकृति के द्वारा जीवात्मा के कल्याण के लिए सृष्टि का निर्माण नहीं कर सकता? क्या पंचमहाभूतों का उपयोग जगत् उत्पत्ति के लिए एवं जगत् को सुचारु रूप से चलाने के लिए नहीं करता? इससे उसका सर्वगुण संपन्न होना कैसे नष्ट होगा? उसी तरह माया का उपयोग अवतार धारण के लिए यदि परमात्मा करता हो तो इसमें दोष क्या है?

वैदिक विद्वान – माया को आप प्रकृति के किन तत्वों में समाविष्ट करते हैं?

क्या किसी ऋषि-मुनि, दार्शनिक या तत्ववेत्ता ने सृष्टि के आधारभूत तत्त्वों में माया की गणना की है?

पौराणिक पंडित - यह सत्य है कि किसी तत्ववेत्ता ने माया को सृष्टि रचना के मूलतत्वों में समाहित नहीं किया है, लेकिन लोगों में जो भ्रमावस्था या भास होने जैसी स्थिति है उसी रूप में माया को जानना चाहिए। जैसे जादूगर सर्दी के मौसम में आम के पौधे पर आम के फल लटका कर दिखाता है या रज्जू में सर्प का भ्रम पैदा होता है, उसी प्रकार माया भी ईश्वर के रूप में देहधारण की भ्रमावस्था पैदा कर सकती है।

वैदिक विद्वान - इससे यह सिद्ध होता है कि आप असत्य और भ्रामक कल्पना द्वारा ईश्वर के सत्य स्वरूप को असत्य में परिवर्तित कर दिखलाना चाहते हैं। आप नित्य, निराकार, परमात्मा के स्वरूप को माया के द्वारा अनित्य और विकार युक्त दिखलाना चाहते हैं। **इस तरह माया अपनी शक्ति से जब चाहे तब ईश्वर के स्वरूप को परिवर्तित कर सकती है। फिर आप ही बताईए कि ईश्वर सर्वशक्तिमान हुआ या माया? माया ही ईश्वर पर सत्ता स्थापित करेगी कि नहीं? इस तरह माया परब्रह्म पर हावी होगी कि नहीं होगी?**

पौराणिक पंडित - आप हमारी बात का विपरीत अर्थ कर रहे हैं। माया ईश्वर के समान कोई शक्ति नहीं जो उस पर अपनी सत्ता चलाए। हां इतना अवश्य है कि नित्य, निर्विकार, अजायमान ईश्वर माया के प्रभाव से अनित्य समान शरीर धारण करता है। अवतार के समय वह शरीर मायिक हो जाता है। ईश्वर का वह शरीर माया से युक्त हो जाने से भक्तों को वह शरीर जैसा दिखाई देता है किंतु वह परमात्मा का शरीर नहीं होता।

वैदिक विद्वान - पंडित जी महाराज। आप अभाव से भाव को दर्शाना चाह रहे हैं। एक तरफ आप परमात्मा को अशरीरी भी कह रहे हैं। यह तो ऐसा हुआ जैसे कोई कहे कि ''मेरी माता वन्ध्या है।'' आप स्वयं अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर रहे हैं।

पौराणिक पंडित - मैं आप से फिर निवेदन करता हूं कि ईश्वर निराकार होते हुए भी वह अवतार अवस्था में त्रिगुणात्मक प्रकृति (सत्व, रज तम्) से युक्त पंचमहाभौतिक देह धारण कर भासमान होता है, लेकिन परमेश्वर का जन्म एवं कर्म प्रकृतिजन्य नहीं होता, क्योंकि वह प्रकृति से भी परे है। इस तरह जो भक्त ईश्वर के अवतार को जानता है और श्रद्धा रखता है वही सच्चा भक्त है। जिसका जन्म और कर्म प्रकृति

से अत्यंत अलिप्त है, उसी परमात्मा को अवतार की श्रेणी में गिना जाता है।

वैदिक विद्वान – एक ओर आप कहते हैं कि वह परमात्मा त्रिगुणात्मक प्रकृति के आवरण में नहीं आता और दूसरी ओर माया (प्रकृति) के प्रभाव से ईश्वर अनित्य देह धारण करता है, यह कथन आपके मुख से बार-बार आ रहा है। कभी आप कहते हैं कि वह स्वयं में देह धारण करने का आभास पैदा करता है और कभी यह कहते हैं कि वह प्रकृति से अत्यंत अलिप्त है, यह एक दूसरे के विरुद्ध वचन कहकर आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं? जो परमात्मा अविद्या अज्ञान, माया, प्रकृति से अत्यंत दूर है, वह इन साधनों से अवतार (देहधारण) कैसे कर सकता है? आप 'नास्ति में अस्ति', भाव उत्पन्न कर रहे हैं। एक असत्य को छुपाने के लिए अनेक असत्य युक्तियां दे रहे हैं। दूसरी बात यह भी कह रहे हैं कि वह परमात्मा जन्म एवं कर्म के बंधन में नहीं आता। अवतार का ग्रहण करना ही इस बात का द्योतक है कि वह दुष्टों का नाश एवं सज्जनों की रक्षा के लिए जन्म ग्रहण करता है। जब कर्म नहीं करेगा तो दुष्टों का नाश कैसे करेगा? क्या रावण और कंस का नाश आपके अवतार धारण कर्ता ईश्वर ने नहीं किया? देह धारण का उद्देश्य ही कर्म करना और जन्म लेना इस अर्थ में है। आपकी हर बात निराली है, जिसका समर्थन करना चाहते हैं, उसी का खंडन भी आप करते हैं। आपके अवतार में भ्रमावस्था (मायावाद) अधिक है और आपके कथन में भी भ्रम जैसी स्थिति है।

पौराणिक पंडित – परमात्मा का जन्म और कर्म सामान्य मनुष्य की तरह स्थूल पंचमहाभूतात्मक नहीं होता, वह अवतारवादी परमात्मा माया के द्वारा भासमान होते हुए भी प्रकृतिजन्य स्थिति से अत्यंत दूर होता है और जन्म एवं कर्म के परिणाम अभाव से युक्त रहता है। परब्रह्म की मूल अवस्था में ही अवतारी ईश्वर का स्वरूप रहता है, वह दृश्यमान होते हुए भी अव्यक्त और अविकारी होता है। एक उदाहरण के तौर पर देखिए, जैसे अगरबत्ती जल जाने पर सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर भी अव्यक्त अवस्था में रहती है। **अगरबत्ती जल जाने पर आप कहेंगे कि वातावरण में अब अगरबत्ती नहीं है, लेकिन सूक्ष्म रूप में अगरबत्ती अब भी वातावरण में विद्यमान है, सिर्फ उसका रूप बदल गया है। उसी तरह परब्रह्म परमात्मा अवतार अवस्था में स्थूल और साकार रूप में आता है।** वह जन्म लेकर भी जन्म रहित रहता है और कर्म रहित होकर भी कर्म करता है।

वैदिक विद्वान – आप यह कह कर बार-बार अपनी प्रतिज्ञा भंग कर रहे हैं।

जिस बात का समर्थन आप कर रहे हैं, उसी बात का खंडन भी आप कर रहे हैं, इसके सिवाय आपके पास कोई चारा भी नहीं है। जैसे कोई कहे कि प्रकाश ही अंधेरा है और अंधेरा ही प्रकाश है, उसी तरह आपके तर्क, बुद्धि विरोधी हैं। जब आप अपने ईश्वर के अवतार को भ्रम मूलक बतला रहे हैं तो आपका कथन भी भ्रम से युक्त ही होगा। जिसका उद्देश्य भ्रम पैदा करने वाला ही होगा। आपका तर्क, बुद्धि और ज्ञान की दृष्टि से अव्यवहार्य है। रही बात अगरबत्ती के उदाहरण की आपके इस युक्तिवाद में ही कोई तथ्य नहीं है। क्योंकि अगरबत्ती दोनों अवस्थाओं में जड़ है। स्थूल पदार्थ जब सूक्ष्म अवस्था में जाता है, तब वह अत्यंतसूक्ष्म और अव्यक्त होता है और जब कारण रूप प्रकृति स्थूल में आती है, तब वह दृश्यमान पदार्थ में प्रकट होती है। वह दोनों अवस्थाओं में जड़ होती है। अगरबत्ती भी इन दोनों अवस्था में जड़ है। परब्रह्म, परमात्मा दोनों अवस्था (स्थूल सृष्टि) दोनों अवस्थाओं में जड़ रहता है, लेकिन परमात्मा एकरस, अखंड, अविकारी रहता है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, लेकिन अगरबत्ती जैसे पदार्थ अवस्थानुरूप बदलते रहते हैं, उनकी तुलना सर्वशक्तिमान परमेश्वर से करना अध्यात्म विज्ञान के विरुद्ध है। परमात्मा मनुष्य की तरह नहीं है। मनुष्य देह धारण करने से पूर्व जीवात्मा के रूप में रहता है और जन्म लेकर प्रकट होता है तथा सुख-दु:ख का भोग करता है परमात्मा, जीवात्मा की तरह देह धारण नहीं करता क्योंकि वह सुख दु:खादि विकारों में नहीं आता। अगर परमात्मा को जीवात्मा की तरह मान लेंगे, तो फिर मनुष्य के जितने विकार हैं, वे परमात्मा में आ जाएंगे। इससे वह अपने दिव्य गुणों से पूर्णत: रहित हो जाएगा।

मनुष्य का शरीर संस्कार, कर्म और भोग का परिणाम है। यह सिद्धांत जन्म लेने वाले जीवात्मा पर लागू होता है, परमात्मा पर नहीं। आप खींच तान कर परब्रह्म परमात्मा को जन्म मरण के मेले में क्यों घसीटना चाहते हैं? परमेश्वर को परमेश्वर रहने दीजिए और जीवात्मा को जन्म मरणादि के बंधन में आने दीजिए। अत: अवतार का मानना किसी भी अवस्था में उपयुक्त नहीं है और न यह शुद्ध अध्यात्म के अंतर्गत आता है।

पौराणिक पंडित- हम लोगों का जन्म कर्मजन्य (कर्मफल प्राप्ति के लिए) होता है, वैसे भगवान का जन्म संचित कर्मों के भोग के लिए नहीं होता, यह विशेषता भगवान के जन्म (अवतार) की है। क्या आप इस तर्क को स्वीकार नहीं करते?

वैदिक विद्वान- कर्म चाहे कोई करे उसकी अच्छी-बुरी प्रतिक्रिया होने वाली है, यह त्रिकाल सत्य है। आप यह बताइए कि जितने भी अवतार हुए उन्होंने जो कर्म किए उनके कर्म चाहे अच्छे हों या बुरे, फल मिले या न मिले, उनके लिए वे कर्म कारण है और फल कार्य हैं। यहां तक कि सीता के वियोगवश राम को दु:ख उठाना पड़ा, जहां राज्याभिषेक होने वाला था वहां दूसरे दिन वनवाास जाना पड़ा, यह क्रियाओं या कर्मो का फल ही तो है। स्वयं श्रीराम कहते हैं-

न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी, मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।
शोकेन शोको हि परम्पराया मामेति, भिन्दन् हृदयं मनश्च।।3।।

-वाल्मीकी रामायण अरण्य कांड सर्ग 35 श्लो. 17

अर्थ - हे लक्ष्मण मैं समझता हूं इस भूमंडल पर मेरे समान दुष्कर्म करने वाला पापी पुरुष और कोई नहीं है, क्योंकि एक के पश्चात् एक दु:खों की अविछिन्न धारा निरंतर मेरे हृदय और मन को विदीर्ण किए डालती है।

पूर्व मया नूनमभीप्सितानि, पापानि कर्माण्यसत्कृत कृतानि।
तन्नायमद्यापततो विपाको, दु:खेत् दु:खं यदहं विशामि।।4।।

-वाल्मीकी रामायण, अरण्यकाण्ड सर्ग 35 श्लो. 18

अर्थ - पूर्व जन्म में निश्चय ही मैंने एक के पश्चात् एक यथेष्ट पाप किए हैं, उन्हीं पापों का फल आज मुझे मिल रहा है और मुझ पर दु:ख के ऊपर दु:ख आ रहे हैं।

पौराणिक पंडित - भगवान् मनुष्य की तरह गर्भधारण कर जन्म नहीं लेते। भगवान् श्रीकृष्ण सर्वप्रथम वसुदेव के मन में आते हैं और नेत्रों के द्वारा देवकी जी में प्रवेश करते हैं। देवकी जी मन से ही भगवान् श्रीकृष्ण को गर्भ में धारण करती हैं। क्या आप इस अलौकिक विधि से सहमत नहीं हैं?

-श्रीमद्भागवत् 10/2/18

वैदिक विद्वान - एक झूठ को सच साबित करने के लिए कितने झूठ बोलने पड़े हैं, यह आपके इस प्रश्न से महसूस हो रहा है। आप श्रीमद्भागवत् का इस आशय का प्रमाण दे रहे हैं और उधर विष्णु के काले बाल ने देवकी के गर्भ में प्रविष्ट होकर कृष्णावतार का रूप धारण किया। (विष्णुपुराण पु. अ: 5 अ 01) उधर महाभारत के आदि पर्व अध्याय

के 196 वें श्लोक में लिखा है कि नारायण ऋषि ने अपने सर के दो बाल एक काला और दूसरा सफेद उखाडकर फेंक दिए। सफेद बाल से बलराम बनकर रोहिणी के गर्भ में समा गया और काला बाल कृष्ण बनकर देवकी के गर्भ में समाविष्ट हो गया, अब आप ही बताइए कि किस पुस्तक की बात सही मानें? और कितने प्रकार के गर्भ धारण मानें? आपने तो और एक नई (वैज्ञानिक? अथवा अवैज्ञानिक) विधि निकाली है, कि भगवान पहले वसुदेव के मन में आते हैं और नेत्रों के रास्ते देवकी जी के गर्भ में प्रवेश करते हैं। **इस तरह 'द्रविडी प्राणायाम' करने की भगवान् को क्या आवश्यकता थी? सीधी सी मनुष्योचित विधि द्वारा गर्भ में प्रवेश करके जन्म लेते, इसमें क्या बुराई थी। अब आपको शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान (ऐनाटॉमी और फिजियोलॉजी) के ज्ञाताओं को इस विधि के समझने में कितने पापड़ बेलने पड़ेंगे। फिर भी आप इस अवैज्ञानिक विधि को सिद्ध नहीं कर सकते।** अगर यह बात पाश्चात्य राष्ट्र के लोग सुनेंगे तो आप पर और आपकी संस्कृति व सभ्यता पर हंसेंगे नहीं तो क्या करेंगे?

पौराणिक पंडित – जैसे राष्ट्रपति से मिलने के लिए उनके सहायक के माध्यम से जाना पड़ता है, उसी तरह परमात्मा को प्राप्त करने के लिए अवतारी पुरुष के माध्यम से जाना पड़ेगा। इस बात को आप क्यों स्वीकार नहीं करते?

वैदिक विद्वान – आप तो पहले कहते रहे हैं कि धर्म का उद्धार करने और दुष्टों का नाश करने के लिए स्वयं भगवान मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं और अब आप कह रहे हैं कि उसे किसी माध्यम अथवा बिचौलिए की आवश्यकता पड़ती है यह तो आपका ''वदतो व्याघात'' है। आप अपनी ही बात का खंडन कर रहे हैं।

रही आपके इस दलील की कि ''जिस तरह राष्ट्रपति से मिलने के लिए पहले उसके सहायक से मिलने की आवश्यकता होती है, यह दलील उतनी पुख्ता दलील नहीं है, यह तो सामान्य लोगों को भ्रमित करने के लिए ठीक है, पर आपके सामने ये वैदिक विद्वान बैठा है, **आप उसके सामने यह तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं, इसलिए वह उचित नहीं है क्योंकि राष्ट्रपति कोई भी हो वह पहले मनुष्य है और मनुष्य अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान और एकदेशी है।** जो इस तरह के गुणों से युक्त हो, उसे सहायक की आवश्यकता तो पड़ने ही वाली है, लेकिन परमेश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी होने से उसे किसी मध्यस्थ या सहायक की कोई आवश्यकता नहीं है।

पौराणिक पंडित – भक्ति दो प्रकार की होती है एक सगुण भक्ति और दूसरी निर्गुण भक्ति। सगुण भक्ति के लिए आवश्यकता है कि भगवान् सगुण साकार रूप में अवतार लेवे। इसके बारे में आप क्या कहते हैं?

वैदिक विद्वान – देखिए। भक्त और भगवान के बीच संबंध स्थापित करने के लिए (भक्ति योग) एक ही मार्ग हो सकता है, दो या अनेक नहीं, **जैसे रेखागणित का एक सिद्धांत है कि दो बिंदुओं को आपस में जोड़ने वाली सबसे सरल, छोटी और निर्दोष रेखा हो सकती है, दो नहीं, सगुण भक्ति के लिए दोनों का साकार होना जरूरी है और निर्गुण भक्ति के लिए दोनों का निराकार होना जरूरी है।** आत्मा और परमात्मा दोनों ही निराकार होने से ध्यान द्वारा हम उस निराकार परमात्मा की भक्ति कर सकते हैं, लेकिन सगुण भक्ति के लिए परमात्मा को अवतार लेना पड़ेगा जो असंभव है। भक्ति हमारा यहां विवेचन विषय नहीं है फिर भी सगुण-निर्गुण भक्ति का विषय उपस्थित होने से विवेचन करना पड़ा।

पौराणिक पंडित – फिर आपके मतानुसार सगुण-निर्गुण किसे कहते हैं?

वैदिक विद्वान – सगुण साकार निर्गुण निराकार यह परमात्मा का स्वरूप नहीं हो सकता। गुणों से युक्त सगुण और गुणों से रहित निर्गुण यह इन दो शब्दों का अर्थ है। अर्थात् परमात्मा कुछ गुणों से युक्त होने से सगुण और कुछ जैसे जड़त्व, अविद्या और एकदेशी आदि गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण है। अतः शास्त्रीय अर्थ तो यही है। सगुण साकार और निर्गुण, निराकार के लिए यहां कोई अवकाश नहीं है।

''गुणेन सहितः सगुणः तथा निर्गताः गुणाः यस्मात् सः निर्गुणः''

पौराणिक पंडित – फिर सगुण भक्ति की प्रथा कब और कहां से प्रारंभ हुई?

वैदिक विद्वान – देखिए, यहां भक्ति संप्रदाय की विवेचना अभीष्ट नहीं है, लेकिन आपने पूछा है इसलिए यह बताना भी आवश्यक समझता हूं। स्वामी रामानंद के भक्ति आंदोलन से सगुण भक्ति संप्रदाय प्रारंभ हुआ। इस संप्रदाय में पुराणों को विशेषतः भागवत् पुराण को विशेष महत्व दिया गया है। उसे ही आधार बनाकर सगुण साकार ईश्वर की भक्ति प्रचलित हुई। **वेदों, उपनिषदों के ज्ञानमार्ग को छोड़कर मध्यकालीन अनेक संतों ने सगुण भक्ति मार्ग की राह पकड़ी जो सहज, सरल और बोधगम्य लगती थी, विदेशी मुगलों के सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आक्रमण को रोकने के लिए इससे उपयुक्त और कौन सा मार्ग हो सकता था।** वैसे यह मार्ग काल सापेक्ष था और जरूरी भी था। ऐसे संक्रमण काल

में भारतीय समाज को क्लिष्ट वैदिक ज्ञानमार्ग के द्वारा भक्ति की ओर मोड़ा नहीं जा सकता था, अत: साधु-संतों ने सरल सगुण भक्तिमार्ग को अपनाया। (हिंदी साहित्य का इतिहास) कबीर, तुलसीदास, नानक, चैतन्य प्रभु आदि संत सगुण भक्ति की धारा और परंपरा में आते हैं।

पौराणिक पंडित - सगुण भक्ति का माध्यम ईश्वरीय अवतार है तो हमें उस माध्यम को स्वीकार करना चाहिए।

वैदिक विद्वान - सगुण भक्ति संप्रदाय का मूल उदगम स्थान भागवत् पुराण है, जिसमें भगवान के तीन रूप दर्शाए गए हैं- 1. स्वयं रूप 2. तदेकात्मकरूप और 3 आवेशरूप। भागवत् पुराण कर्ता का मानना है कि स्वयंरूप भगवान सृष्टि के निर्माण और संरक्षण की प्रक्रिया के फलस्वरूप नानारूपों में अवतीर्ण (अवतार रूप में) होते हैं। उनका यह भी मानना है कि भक्तों के प्रेम, आग्रह स्वरूप, गुणातीत (निर्गुण अथवा निराकार) भगवान सगुण हो जाते हैं, संदर्भ : (भारतीय धर्म एवं संस्कृति ले. बुद्ध प्रकाश पृ. 156) आपका कहना है कि सगुण भक्ति के लिए अवतार को स्वीकार कर लेना चाहिए। वस्तुत: यह ''दुर्जनतोषन्याय'' से आप कह रहे हैं। जो वस्तु जैसी है, उसे वैसी मानना, जानना और उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना विद्या है और इसके विपरीत करना अविद्या है। **जब वेदों, उपनिषदों, दर्शन शास्त्रों ने ईश्वर के स्वरूप को अव्यक्त, इंद्रिय अग्राह्य माना है तो थोड़ी सी भ्रामक संतुष्टि के लिए वेदादि शास्त्रों के विपरीत भक्ति को स्वीकार क्यों करें।** आज की अल्पसंतुष्टि आगे आने वाली कितनी ही पीढ़ियों को अज्ञान अंधकार के गर्त में ले जाएगी, इसका भी विचार हमें करना चाहिए। धार्मिक एवं राजनैतिक विदेशी आक्रमण के विरोध में किया गया सामान्य जन समुदाय का संगठन यह तात्कालिक फल दे सकता है, परंतु जहां संपूर्ण मानव कल्याण की बात आती है अथवा वेदों के अध्यात्मवाद की बात हो तो असत्य से क्यों समझौता किया जाए, अत: असत्य सगुण भक्ति मार्ग का त्याग कर ध्यान धारणा आदि अष्टांग योग द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग हमें अपनाना चाहिए।

पौराणिक पंडित - मूर्तिपूजा कब ओर किसने प्रारंभ की ?

वैदिक विद्वान - महाभारत युद्ध के 2500 वर्ष बाद, बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् मूर्तिपूजा प्रारंभ हुई, क्योंकि बुद्ध के विचारों से प्रेरित होकर विश्व का एक बहुत बड़ा भाग बौद्ध धर्मी हो गया और श्रद्धा के अतिरेक के कारण स्थान-स्थान पर बुद्ध की प्रतिमा

बनाकर पूजा की जाने लगी। इसे देख हिंदुओं में भी मूर्तियों के निर्माण व उनकी पूजा प्रारंभ हुई। **जैन मतावलंबियों के कारण इस प्रतिमा पूजा का और विस्तार हुआ। महावीर जैन की मूर्तियां देख जन समुदाय उस ओर आकर्षित होने लगा।** अत: सभी मतानुयायी आम जनता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विभिन्न देवी, देवताओं की कल्पना कर मूर्तियां बनाने लगे। इससे पूर्व महाभारत के समय तक मूर्तिपूजा का प्रचलन नहीं हुआ था।

पौराणिक पंडित – जैनियों व बौद्धों पर ही मूर्तिपूजा का आरोप क्यों लगाया जाता है?

वैदिक विद्वान – यह आरोप नहीं, अपितु ऐतिहासिक तथ्य है। अति प्राचीन काल में मूर्तिपूजा नहीं थी। पूर्व मध्यकाल में जब कर्मकांड का स्वरूप विकृत होकर उसका प्रचार बहुत बढ़ गया, जब यज्ञों में पशुबलि दी जाने लगी, तब महान आत्मा बुद्ध व महावीर जैसे समाज सुधारकों ने इस मान्यता का विरोध किया व ऐसे कर्मकांड की भरपूर निंदा की। इस कारण निरीश्वरवादी बौद्धमत व जैनमत की स्थापना हुई, महान आत्मा महावीर की मृत्यु के पश्चात् तीर्थकरों की मूर्तियां स्थापित होते देख हिंदुओं ने भी राम, कृष्ण, विष्णु, आदि देवी-देवताओं की मूर्तियां बनाई। जैनियों ने 24 तीर्थकरों की कल्पना की तो **हिंदुओं ने भी 24 अवतारों का प्रतिपादन कर दिया। इतना ही नहीं जिस महात्मा बुद्ध ने हिंदुओं की मान्यताओं का घोर खंडन किया, उनको भी एक अवतार घोषित कर दश अवतारों में शामिल कर लिया।**

पौराणिक पंडित – अवतार एवं मूर्तिपूजा का समाज पर किस प्रकार का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है स्पष्ट करें?

वैदिक विद्वान – अवतार एवं मूर्तिपूजा की कल्पना निराश, परावलंबी एवम् उदास लोगों की उपज है। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् संपूर्ण भारत मुगलों के आधीन हो गया। हज़ारों मंदिर ध्वस्त कर दिए गए, सहस्त्रों हिंदुओं को मुसलमान बनाया जा रहा था, खुले आम मौत एवं लूटपाट का तांडव मचा हुआ था। सिंध, पंजाब, दिल्ली, कश्मीर व बांगलादेश आदि भागों को मुस्लिम बहुल बना दिया गया था। डॉ. राजेंद्र शर्मा लिखते हैं कि-''सोमनाथ की मूर्ति तोड़ने के पश्चात् हिंदू समाज की पारंपरिक मूर्तिपूजा को बहुत बड़ा धक्का लगा।'' **मोहम्मद गजनवी के वाक्य आज भी प्रसिद्ध हैं। जब मंदिर के एक पुजारी ने मूर्ति न**

तोड़ने के लिए बहुत धन देने का प्रलोभन दिया तब गजनवी ने कहा था। ''मैं मूर्तिभंजक के नाम से प्रसिद्ध होना चाहता हूं, मूर्ति विक्रेता के नाम से नहीं।'' और उसने सोमनाथ की मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। संदर्भ: हिंदी साहित्य का इतिहास-प्रकाशक रीगल बुक डिपो, दिल्ली-6 पृष्ठ 55-56।

डॉ. श्याम सुंदर दास इसी बात की पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि ''लगभग सन् 1138 ई. तक देवी-देवताओं की मूर्तियों की कमजोरी पूर्ण रूप से स्पष्ट हो चुकी थी।'' इन घटनाओं से सिद्ध होता है कि जनता के करुण क्रंदन के पश्चात् भी भगवान भक्तों की रक्षा के लिए आगे नहीं आए। हिंदू समाज के लिए यह बहुत बड़ा मानसिक आघात था।

पौराणिक पंडित - अवतारवाद एवं मूर्ति पूजा पराजित मनोवृत्ति की द्योतक है, यह आप कैसे कह सकते हैं?

वैदिक विद्वान - महाभारत युद्ध के पश्चात् लगभग 2000 वर्षों तक हमारा देश संभल नहीं पाया। इसके बाद राजनैतिक स्थिरता आई। आर्थिक स्थिति भी सुधर चुकी थी। आम लोग प्रेम पूर्वक रहते हुए भक्तिमार्ग का अनुसरण करने लगे। तब तक वेद, उपनिषद्, गीता इत्यादि सत्य शास्त्रों का ही प्रचलन था, परंतु भारत देश की अपार संपत्ति पर विदेशियों की वक्र दृष्टि पड़ी, जिसके फलस्वरूप ई. सन् 712 से सिंध एवं पंजाब के मार्ग से मुसलमानों का आक्रमण प्रारंभ हुआ, सबसे पहला आक्रमण मुहम्मद बिन कासिम ने किया दो-तीन सौ वर्ष तक सतत आक्रमणों का शिकार होते हुए भारत वर्ष की आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति की अपरिमित हानि हुई।

मुस्लिम आक्रांताओं ने केवल राजकीय सत्ता या सम्पत्ति लूटने के लिए ही भारत पर आक्रमण नहीं किया, अपितु यहां की शांतिप्रिय जनता को मुसलमान बनाना भी उनका अन्यतम उद्देश्य था। (माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास पृ. 224-225) इस प्रकार सारा उत्तर भारत यवनों के अधीन हो गया और ऐसे निराशामय युग में हीनता या पराभव की भावना फैलना स्वाभाविक ही थी। एक ओर विदेशी आक्रमण तो दूसरी ओर विभक्त हुआ समाज। इस कारण सम्पूर्ण भारतीय जनता परावलंबी होकर किसी अवतार का रास्ता देखने लगी, कि कोई अवतारी पुरुष आएगा व हमें इन संकटों से बचाएगा। इन भोली कल्पनाओं के कारण हिंदू समाज मूर्तिपूजा के पीछे लग गया। ऐसी भयानक अवस्था में व्यक्ति

दो मार्गों में से किसी एक का चयन करता है या तो भक्ति की ओर लगता है या 2. भोग विलास की ओर।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ''हिंदी साहित्य के इतिहास'' में लिखते हैं कि ''भक्ति आंदोलन की उत्पत्ति का कारण राजनैतिक पराभव है।'' बाबू गुलाबराय भी इस मत का समर्थन करते हैं। इन दोनों विद्वानों के मतानुसार भक्ति आंदोलन (अवतार एवं जड़पूजा) मध्यकालीन निराशा एवं पराभव वाली मनोवृत्ति की सूचक है, जोकि मुस्लिम राज्य की स्थापना के कारण हिंदू-समाज में आई (हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ राजेंद्र शर्मा पृ. 45.46) जब मनुष्य शारीरिक तौर पर गुलाम हो जाता है तो उसका मनोबल भी गिर जाता है। उसे आत्मग्लानि महसूस होने लग जाती है। मध्य काल में मुसलमानी आक्रमण के पश्चात् वैदिक काल से चली आ रही आध्यात्मिक ऊर्जा क्षीण होती चली गई और समाज किसी देवी अवतार की राह देखने लगा। डॉ. राम कुमार वर्मा लिखते हैं-''हिंदुओं में मुसलमानों से लोहा लेने की शक्ति नहीं रह गई थी। वे मुसलमानों को न तो पराजित कर सकते थे न अपने धर्म की अवहेलना ही सहन कर सकते थे। इस अवस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था। वे ईश्वरीय शक्ति और अनुकंपा पर ही विश्वास रखने लगे। दुष्टों को दंड देने का कार्य भी ईश्वर पर छोड़ दिया।'' (हिंदी साहित्य-प्रेरणाएं और प्रवृत्तियां पृ. 62) इस प्रकार हिंदू समाज में निराशा एवं पराभव का परिपाक ही अवतारवाद एवं मूर्ति पूजा है।

पौराणिक पंडित - अवतार व मूर्ति पूजा से आध्यात्मिक ऊर्जा का ह्रास होता है, इसे हम कैसे मान लें?

वैदिक विद्वान - आध्यात्मिक ऊर्जा का स्थान हमारा हृदय है। जब हमने ईश्वर को अपने हृदय में ध्यान, नाम स्मरण और उपासना के द्वारा अनुभव करना छोड़ दिया और इसे हृदय से निकाल बाहर कर दिया, तब हमारी ऊर्जा का एक बड़ा भारी स्रोत हमने अपने शरीर से अलग कर दिया। हम बहिर्मुख होकर अपनी शक्ति को अन्यत्र खर्च करने लग गए, तब हमारी ऊर्जा खत्म होने लगी। जिस तरह आदमी गाढ़ी निद्रा के पश्चात् अपने आपको तरोताजा अनुभव करता है, **इसी तरह हृदय में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना के द्वारा उसे अपने निकट पाता है तो उसकी आध्यत्मिक ऊर्जा द्विगुणित हो जाती है और वह अपने आपको आनंदित उत्साही और मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक शक्ति से युक्त पाता**

है। यही तो ईश्वर उपासना का प्रतिफल है। अवतार पूजा से आत्मा, चित्त और हृदय का उससे कोई संबंध नहीं रह जाता। हम अवतार के दृश्यरूप चित्र अथवा मूर्ति में अपने मन को लगाने की कोशिश करते हैं। मन विकेंद्रित होकर भटकने लगता है। मन, आत्मा जिस रूप में है उसी रूप में उसका आलंबन होना आवश्यक है, जड़ रूप आलंबन से चित्त स्थिर नहीं हो सकता। निराकार आत्मा ही निराकार परमात्मा का ध्यान कर सकता है ''योगश्चित्तवृत्तिर्निरोधः'' चित्त की वृत्तियों का निरोध (अवरोध) ही योग अर्थात् आत्मा परमात्मा का संयोग है, योगदर्शन। अतः आत्मिकबल अथवा ऊर्जा के लिए निराकार परब्रह्म परमात्मा का हृदय में ही ध्यान करना आवश्यक है।

पौराणिक पंडित – यज्ञ, कर्मकांड एवं वर्णाश्रम धर्म का विरोध करने वाले गौतम बुद्ध को हिंदू धर्म में अवतार क्यों घोषित किया?

वैदिक विद्वान – गौतमबुद्ध के उपदेशों के प्रति अन्य मतावलंबियों के तुल्य हिंदू जनता भी आकर्षित हो रही थी ऐसी परिस्थिति में हिंदू धर्माचार्यों की चिंता स्वाभाविक ही थी। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियों ने ''बुद्धं शरणं गच्छामि'' का उद्घोष करते हुए हिंदू जनता को मकड़ जाल रूपी कर्मकांडों तथा पारंपरिक रूढ़ियों से छुड़ाने के लिए प्रयास किया। बौद्धों के इस प्रयास को असफल बनाने के उद्देश्य से तथा हिंदुओं को अपनी ओर आकर्षित होने वाला हिंदू समुदाय कुछ अंशों में रुका भी। कांटा कांटे को निकालता है, इस न्याय से हिंदू धर्म में बुद्ध को अवतार घोषित करने में यही कारण प्रतीत होता है।

पौराणिक पंडित – अवतार की कल्पना से राष्ट्र का नुकसान कैसे होगा? कृपया स्पष्ट करें।

वैदिक विद्वान – अवतार की कल्पना से समाज के लोग आलसी, प्रमादी एवं भाग्यवादी हो जाएंगे। जब लोग पुरुषार्थहीन होंगे तो समाज एवं राष्ट्र ही पुरुषार्थहीन हो जाएगा और फिर आगे क्या बताएं, सोमनाथ मंदिर पर जब महमूद गजनवी ने आक्रमण किया था, तब कर्मकाण्डी ब्राह्मणों ने राजा से कहा कि अभी युद्ध का मुहूर्त नहीं है। शुभ मुहूर्त में ही शस्त्र उठाना चाहिए, घबराने की बात नहीं है। भगवान् सोमनाथ ही अपनी तीसरी आंख खोलकर सभी म्लेच्छों का नाश कर देंगे। **इस प्रकार राजा और पुजारी सभी लोग तथाकथित भगवान का रास्ता देखते रहे और महमूद गजनवी ने सर्वप्रथम पुजारियों को मारा एवं मंदिरों**

का सोना, चांदी, हीरा, मोती, आदि हजारों मन धनदौलत, ऊंट, घोड़ों पर अपने देश गजनी ले गया। 7 वें शतक से लेकर 14 वें शतक तक न जाने कितने आक्रमण हुए हैं। इसमें हमारे देश के कुछ धर्माधिकारियों का भी हाथ है, साथ ही दैवाधीनता, अवतारवाद आदि भी कारणी भूत हैं। यदि देश के लोग निराकार ईश्वर पर श्रद्धा रखते एवं सतत जाग्रत रहते तो इतना नुकसाान देश का नहीं हो पाता। सर्वशक्तिमान्, निराकार ईश्वर की भक्ति से मनुष्य पुरुषार्थी और स्वाभिवानी बनता है एवं राष्ट्र भी जाग्रत रहता है।

पौराणिक पंडित – अवतार के आश्रित होकर कोई भी राष्ट्र अपनी उन्नति नहीं कर सकता इसका क्या प्रमाण है?

वैदिक विद्वान – देखिए, पंडित जी। अवतार पर आश्रित रहकर के ''कोई अवतार आएगा और फिर इस धर्म और समाज का उद्धार करेगा और दुष्टों का नाश करेगा,'' इस विचारधारा से व्यक्ति और राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता, क्योंकि जो कुछ भी करना है वह उस राष्ट्र के लोगों को ही करना है। जापान जैसा राष्ट्र द्वितीय महायुद्ध में संपूर्ण ध्वस्त हो गया था। नागासाकी और हिरोशिमा पर अणुबम के प्रहार से बेचिराग जापान अपने बलबूते और अपनी दृढ इच्छा शक्ति के जोर पर फिर से दुनिया के नक्शे पर उठ खड़ा हो गया। यह वहां के लोगों के मनोबल, मेहनत और मजबूत इरादों का परिणाम ही तो है। यदि भारतवासियों की तरह सोचता कि कोई अवतार आएगा और हमारे राष्ट्र को उन्नत करेगा तो आज जापान और जर्मनी इतनी उन्नति नहीं कर पाते।

महाभारत के ढाई हज़ार वर्ष पश्चात् मुगलों के आक्रमण से भारत टूटता चला गया। उसके टूटने के अनेक कारणों में धार्मिक बिखराव, दैववाद, अनेकेश्वरवाद अथवा एकात्मता का अभाव, ये भी महत्तपूर्ण कारण हैं, लेकिन यहां वर्ण्य विषय अवतारवाद होने से उसी पर चर्चा केंद्रित है। अत: यह बिखराव भी एक बड़ा कारण है। इसी मध्यकाल में जहां शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अनेक मत उत्पन्न हुए वहां जैन, बौद्धमत भी प्रचलित थे। इससे समाज ऐक्यभाव रूप से टूटता चल गया। इन सभी ने अपने-अपने मत के अनुरूप महापुरुषों को अवतार घोषित किया। महापुरुषों के अवतारों से आपस में विद्वेष की भावना पैदा होती चली गई। मुस्लिम आक्रांताओं ने इसका बहुत लाभ उठाया। वे टूटे हुए हिंदुस्तान पर आसानी से कब्जा कर सके। इस तरह भारतवर्ष गुलाम बनता चला गया।

मुसलमान प्रत्येक दृष्टि से संगठित थे, धार्मिक एकता, एकेश्वरवाद और एकोपासना पद्धति के साथ-साथ सैनिक शक्ति उनकी अतुलनीय थी और इसके विपरीत हमारा राष्ट्र छोटे-छोटे राज्यों में बिखरा पड़ा था, इसलिए यहां के राजा संगठित होकर उन आक्रांताओं को रोक न सके। सारे देश का धन आक्रांता लूट करके ले गए, ऐसी अवस्था में इस राष्ट्र की उन्नति कैसे हो सकती थी।

डॉ. नगेंद्र **''हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखते हैं- देश के भाग्य की विडंबना यह रही कि शताब्दियों से श्रेष्ठता की साधना में तल्लीन वह राष्ट्र जीवन महमूद गजनवी जैसे आक्रांताओं की विजयाकांक्षा का कोपभाजन बन गया और शताब्दियों तक उस कोप से मुक्ति न मिली।** (पृष्ठ-57)

राष्ट्र और समाज की यदि उन्नति करनी है तो उसे भौतिक समृद्धि से संपन्न होना तो आवश्यक है ही, लेकिन साथ में सामाजिक भावगत एकता भी परमावश्यक है, जिसका मध्यकाल (आक्रमणकाल) में नितांत अभाव था।

पौराणिक पंडित - आप यह बताइए कि अवतार मानने से हमारी संस्कृति, इतिहास और धर्म पर कौन-कौन से आक्षेप विधर्मी और विदेशी विद्वान करते हैं?''

वैदिक विद्वान - जब विदेशी विद्वान् और विधर्मी हमारे ग्रंथों को देखते हैं तो वे अवतार के नाम पर इस प्रकार महापुरुषों पर लगाए गए आक्षेप पढ़ते हैं, सुनते हैं, तो वे हिंदूधर्म की उपेक्षा करने लगते हैं और जहां मौका मिलता है वहां बुराईयां और निंदा करने में पीछे नहीं हटते। आप एक तरफ तो धर्म का उद्धार करने के लिए दुष्टों का नाश अथवा लीलाएं प्रकट करने के लिए भगवान के अवतार की बात कहते हैं, लेकिन वास्तव में देखा जाए तो ग्रंथों में इससे उल्टा है। कहीं-कहीं उन पर अश्लील आरोप लगाकर उन्हें बदनाम करने के लिए अवतार की कल्पना की गई हो, ऐसा लगता है। लिंगपुराण, पूर्वार्ध अ. 96 में नृसिंह अवतार का वध करने सिर काटने व देह की खाल उतारने की घटना उद्धत की गई हैं। श्रीकृष्ण की 16108 रानियों से संबंध भागवतपुराण में बतलाया गया है, क्या यह एक योगेश्वर योगिराज महानात्मा पर अनर्गल आरोप नहीं है?

सती वृंदा से विष्णु का छल-कपट से शरीरिक संबंध बनाना और प्रकट होने पर वृंदा द्वारा शाप देना और उसका रामायण काल में प्रभु रामचंद्र के रूप में फल भोगना अवतारवाद की सत्यता पर क्या प्रश्न चिन्ह नहीं लगाता है। मत्स्यावतार की लंबाई भागवतपुराण स्कंद (श्लोक 24 में) 2 लाख मील बतलाना विदेशी

विद्वानों के लिए हंसी मजाक का कारण है कि नहीं? जबकि पृथ्वी की परिधि केवल 12,756 कि. मीटर है। इस प्रकार की अतिशयोक्ति पूर्ण अनर्गल बातों पर विदेशी विद्वान और धर्माचार्य अविश्वास ही करेंगे और हिंदूधर्म की श्रेष्ठता पर अंगुली उठाएंगे ही। इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए।

पौराणिक पंडित – अवतार युग के असंबद्धता की भी आप बात करते हैं, जबकि प्रत्येक युग में अवतार लेने की बात कही गई है।

वैदिक विद्वान– अवतार युगों में असंबद्धता की बात क्यों न करें, जबकि उनमें कोई न्यायोचित मेल नहीं दिखाई देता। सतयुग में जब चारों चरण धर्म ही धर्म था, तब 4–4 अवतारों की क्या आवश्यकता थी? और अब कलियुग में जब कि चारों दिशाओं में अधर्म और दुष्टों का नंगा नाच चल रहा है, तब एक भी अवतार जन्म लेने के लिए तैयार नहीं है, इसे अवतार की असंबद्धता नहीं कहें तो क्या कहें? **मध्यकाल से पूर्व अर्थात् द्वापर युग के 2500 हज़ार वर्ष पश्चात् मुस्लिम आक्रमणकारियों के इस देश पर आक्रमण होने लगे और भक्तों का मूलोच्छेद होने लगा तब कोई अवतार अवतरित क्यों नहीं हुआ? इसका उत्तर क्या आपके पास है? लाखों हिंदुओं को मौत के घाट उतारा गया, मंदिरों, मूर्तियों को तोड़ डाला गया।** ऐसे विकट समय में एक भी अवतार किसी भी रास्ते से क्यों नहीं आया? क्या भगवान् भी दुष्टों से डर गये थे? कहा भी है कि ''बुरे को खुदा डरे'' इस कारण कोई भी अवतार मुस्लिम आक्रांताओं के सामने उपस्थित नहीं हुआ। यह ऐतिहासिक तथ्य अवतारवाद की धज्जियां उड़ाता है कि नहीं? इसके अतिरिक्त हम आपसे पूछते हैं कि सभी अवतार (बुद्ध को छोड़कर) वैष्णव मत में ही क्यों हुए?

पौराणिक पंडित –हमें नहीं मालूम कि सभी अवतार वैष्णव मत में क्यों हुए?

वैदिक विद्वान – मैं बतलाता हूं कि सभी अवतार वैष्णवमत में क्यों हुए। मध्यकाल के पूर्व अर्थात् पूर्व मध्यकाल में मतमतांतरों का बोलबाला शुरू हो गया। वेद और उपिनषदों के अनुसार धर्म मार्ग से लोग भटकरने लगे और बौद्धधर्म का उत्कर्ष संपूर्ण एशिया महाद्वीप में हो गया। वैष्णव, शैव, शाक्त, चर्वाक आदि मतमतांतर आपस में टकराने लगे। एक दूसरे की होड़ में भोली–भाली जनता को अपनी ओर कौन अधिक खींच सकता है, **यह स्पर्धा प्रारंभ हो गई। अनर्गल, अश्लील और असंभाव्य गपोड़ों से भक्ति में रत जनता को अपनी ओर**

आकर्षित करने का प्रयास सभी करने लगे। उसमें वैष्णव मत ने बाजी मार ली और उन्होंने ऐसी अतिशयोक्तिपूर्ण और असंभव वार्ताओं से पुराणों की रचना की और उसे धार्मिक ग्रंथों का नामाभिधान देकर उन ग्रंथों का उदात्तीकरण किया। इस तरह वैष्णवों ने सभी अवतार अपने मत के घोषित कर दिए। शैव मत पीछे रह गया। वे भगवान् शंकर को भी अपना अवतार घोषित न कर सके। ब्रह्मा, विष्णु महेश इन तीनों देवताओं की हिंदू समाज में समान मान्यता होते हुए भी ब्रह्मा और महेश (शिव) को दशावतार में क्यों नहीं लिया गया? आश्चर्य की बात तो यह है कि ब्रह्म की मूर्ति भारत में केवल पुष्कर तीर्थ अजमेर में है, अन्य जगह कहीं नहीं, यह क्या दर्शाता है, अर्थात् ''जिसके जितने अधिक अनुयाई उसीका नेता'' वाली बात हुई ना?

एक और ऐतिहासिक तथ्य सुन लीजिए, जैनमत के एक ऋषभदेव तीर्थंकर जो कि अनीश्वरवादी 24 तीर्थंकरों में आते हैं, उन्हें भी दशावतार में तो नहीं 24 अवतारों में समाविष्ट किया गया। यह किस कसौटी पर किया गया, इसका भी उत्तर अवतारवादियों के पास नहीं हैं भगवान् बुद्ध अवैदिक एवं निरीश्वरवादी आचार्यों में से थे फिर भागवत् स्कंद 1 व 3 में उन्हें ईश्वर का अवतार क्यों घोषित किया गया, यह भी एक अनुत्तरित प्रश्न है। इस प्रकार एक नहीं सैकड़ों ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर अवतार मानने वाले पौराणिक पंडितों के पास नहीं है, और एक बात सभी अवतार (यदि ब्राह्मण वर्ण के परशुराम को छोड़ दिया जाए) क्षत्रिय कुल में ही क्यों पैदा हुए इसका भी समुचित उत्तर अवतारवादी नहीं दे सकते।

ब्रह्मांड में सर्वत्र व्याप्त परमात्मा के अवतार केवल उत्तर भारत में ही क्यों पैदा हुए, पाश्चिमात्य राष्ट्रों में क्यों नहीं? दूसरा उत्तर भी आप लोगों के पास नहीं, इसका अर्थ यह है कि अवतारवादी ईश्वर को सर्वव्यापक न मानकर एकदेशी और अल्पशक्तिमान मानते हैं।

पौराणिक पंडित – आज के संदर्भ में अवतारों की क्या अवस्था है? क्योंकि कलियुग में अब तक कोई अवतार नहीं हुआ है। कल्की अवतार आना अभी बाकी है।

वैदिक विद्वान – द्वापर युग तक कुल दस अवतार हुए हैं, लेकिन कलियुग में अब तक एक भी अवतार नहीं हुआ ऐसा आप मानते हैं। आपकी इस बात से हम असहमत हैं, क्योंकि पुराणकर्ताओं ने सबको छूट दे रखी है कि कोई भी पुरुष अवतारी हो सकता है।

पौराणिक पंडित – कौन सी छूट की बात कर रहे हैं? पौराणिकों ने तो कोई छूट नहीं दी है।

वैदिक विद्वान – देखिए पंडित जी। **जगद्गुरु शंकराचार्य ने ''अहंब्रह्मास्मि,'' ''तत्त्वमसि ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः।'' ''अयमात्मा ब्रह्म'' इत्यादि का अर्थ जीवात्मा और परमात्मा को अभिन्न बता कर सभी मनुष्यों को ब्रह्म या ईश्वर बनने की खुली छूट दे दी है।** वेदांत दर्शन के इन सूत्रों का वैदिक अर्थ त्याग लौकिक अर्थ लेकर धूर्तो ने अपने आपको भगवानों की श्रेणी में खड़ा कर दिया। जैसे-जैसे चेतन निराकार परमात्मा की उपासना का मार्ग ह्रास होकर जड़पूजा का मार्ग प्रशस्त होता चला गया, वैसे-वैसे बाबाओं की अवतार बनने की लालसा बढ़ती गई है। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक काल में एक मुस्लिम घर में पैदा हुए साईबाबा को हिंदुओं ने अवतार बना दिया। आज करोड़ों हिंदू भाई-बहन-शिर्डी के साईबाबा पर धनमाल लुटाते आ रहे हैं। त्रेता और द्वापर युग के (तथाकथित) अवतारों में कुछ अलौकिक कार्य तो हमें दिखाई देते हैं, जैसे राम के द्वारा लंका में जाकर रावण का नाश और श्रीकृष्ण द्वारा कंस का वध करना, लेकिन 21 वीं सदी के स्वयंभू अवतारों ने मानव कल्याण का कोई काम न करके भी वे अवतारी पुरुष बन गए।

पौराणिक पंडित – आपका संकेत किस ओर है?

वैदिक विद्वान – मुझे तो लगता है पंडित जी, आप कलियुग में किसी को अवतार घोषित नहीं कर रहे हैं, इसलिए ये गुरु घंटाल, भोंदू बाबा अपने आपको अवतार घोषित करने की जुगाड़ में लगे हुए हैं। सिरसा, हरियाणा का गुरुमीत रामरहीम इसने सन् 1990 से डेरा सच्चा में अपने साम्राज्य का फैलाव कर रखा है। वह 1116 एकड़ जमीन में ऐशो आराम और विलासिता के साधनों को खड़ा कर अय्याशी की जिंदगी बसर कर रहा था। सर्वशक्तिमान और खुद को भगवान बताकर उसने अनेक साध्वियों के साथ बलात्कार, हत्याएं, लूट आदि के कुकृत्य किए, जिसके कारण वह पकड़ा गया और आज जेल की सीखचों के पीछे 20 साल के लिए डाल दिया गया है। मैं भी भगवान बन सकता हूं। मैं भी भगवान का अवतार हो सकता हूं। यह भावना ही इसके पीछे है। लेकिन उन्हें यह नहीं पता कि वेद और सत्य शास्त्रों में मानव, मानव ही रहता है, वह कभी भगवान नहीं बन सकता। इस सत्य शाश्वत् सिद्धांत को जीवन में स्मरण रखना चाहिए।

पौराणिक पंडित – आपके विचार से यह सिलसिला कब थमेगा? आपकी बातें सही लगती हैं।

वैदिक विद्वान - पंडित जी! आज इस इक्कीसवीं (2018-19) सदी में हमारा भारत देश मंगल ग्रह और चंद्रमा तक पहुंच गया है, दुनिया में विकासशील देशों में अग्रगण्य हैं और यहां के भोंदू बाबा भक्तों की आस्थाओं का अपहरण कर रहे हैं। आज इस समय लगभग 10 ऐसे बाबा हैं जो **अपने कुकृत्यों से जेल में डाल दिए गए हैं एवं जमानत पर हैं। आसाराम बापू, बाबा रामपाल, राधे मां, निर्मल बाबा, स्वामी नित्यानन्द आदि ऐसे धूर्त और चालाक बाबा हैं, जिन्होंने अध्यात्म का मखौल उड़ाकर अपनी दुकानें चमकाने का कार्य किया है।** उनके ऊपर कोर्ट की तलवारें लटक रही हैं। हमें भगवान के भक्तों को वेद, उपनिषदों के सत्यज्ञान से अवगत कराना होगा। उसके साथ ही इन झूठे अवतारों एवं गुरुडम करने वाले **गुरुओं से बचाने के लिए स्वामी दयानंद लिखित अमर ग्रंथ ''सत्यार्थ प्रकाश'' पढ़ना और पढ़ने के लिए औरों को प्रेरित करना होगा। इन्हीं बातों से हम समाज के भोले-भाले भक्तों को इन भोंदूबाबाओं से बचा सकते हैं।**

पौराणिक पंडित - आपके विचारों से आज यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि ईश्वर अवतार धारण नहीं करता। हम तो अब तक यह समझते थे कि ईश्वर अवतार लेकर अपना सामर्थ्य दिखाता है। आज आपके मुख से, ऐसा ज्ञात हुआ कि वेद, गीता, उपनिषद् आदि सत्यग्रंथों में ईश्वर अवतार लेता है, ऐसा कहीं भी नहीं लिखा हुआ है। जो कुछ लोगों ने ऐसे अर्थ निकाले हैं, वे भोंदू, कर्मकांडी, पाखंडी ब्राह्मणों ने अपनी निजी स्वार्थ पूर्ति के लिए किए हुए हैं। आपके विचारों से हम संतुष्ट हुए तथा आध्यात्मिक अधः पतन से हम अपने आपको बचा सके। आज से हम भी सच्चे निराकार, सर्वशक्तिमान तथा अणु-अणु में विद्यमान ईश्वर की ही उपासना करेंगे। अवतार एवं मूर्तिपूजा के पीछे नहीं दौड़ेंगें। नमस्ते।

वैदिक विद्वान - आप अब पौराणिक पंडित न रहकर वैदिक विद्वान बन गए हैं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि इतनी लंबी चर्चा का फल अति उत्तम रहा। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि अवतार की कल्पना मन गढ़ंत, असत्य और अवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर किसी विशिष्ट और विचित्र मस्तिष्क की उपज है। **ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और निराकार है और उसी अवस्था में सृष्टि की रचना, दुष्टों का संहार और सज्जनों की रक्षा करता है। आपने इस चर्चा में कोई कुतर्क न करते हुए इस परिसंवाद को सफल बनाने में सहयोग किया, इसके लिए आपका धन्यवाद।**

आपको भी मेरा नमस्ते।

***

ईश्वर के स्वरूप में कुछ शास्त्रीय प्रमाण

ईशावास्यमिदं सर्वम्। –यजुर्वेद अध्याय 40 मं. 1

अर्थ– यह ब्रह्मांड ईश्वर से व्याप्त है

न तस्य प्रतिमा अस्ति –यजु. 32/3

अर्थ– उस परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है।

न त्वा वां अस्ति देवता विद्वान। –ऋ. 1/165/1

अर्थ–हे परमेश्वर, आप जैसा न कोई देव है न विद्वान।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। –ऋ.1/164/46

अर्थ– एक ही ईश्वर को अनेक नामों से पुकारा जाता है।

स एष एक वृदेक एव। –अथर्व. 13/4/20

अर्थ– वह परमात्मा एक ही है और बिल्कुल एक ही रहता है।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरम्। –यजु. अध्याय 40 मं. 7

अर्थ– वह परमेश्वर चहुं ओर से तेजोमय है, वह काया अर्थात् शरीर रहित है तथा व्रण, स्नायु आदि से रहित है।

क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरमृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। –योगदर्शन 1/24

अर्थ– वह सुख दुःखादि तथा कर्म व कर्मफलादि वृत्तियों से बिल्कुल रहित है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्। –योगदर्शन 1/25

अर्थ– जो सर्वज्ञ है वही ईश्वर है। वह सब ज्ञानों का बीज है।

रस ॐह्योवायं लब्ध्वानन्दी भवति –तैत्तरीय उप. अनु. 7

अर्थ– वह परमात्मा आनंद स्वरूप है और जीव उसे प्राप्त कर आनंदित होता है।

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः। –ऋग्वेद मं. 1 सू. 10.2 मं. 8

elibrary.thearyasamaj.org

अर्थ- वह ईश्वर आकाशादि भी अपने घेरे में नहीं ले सकते इतना बड़ा है।

तस्यो इयमभ्यवर द्यौः पृष्ठम्।

अंतरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी। -अथर्व. 9-5-20

अर्थ- परमात्मा इतना विशाल है कि उसकी छाती यह भूमि है और पीठ आकाश है, कटिभाग अंतरिक्ष है और समुद्र कोख है।

यो देवानां नामध एक एव। -अथर्व. 2/1/3

अर्थ- वह एक ही देव सभी देवों के (अग्नि, सूर्य, विष्णु, इंद्र आदि) नाम धारण करने हारा है।

नैनमूर्ध्वं न तिर्यंच न मध्ये परिजग्रभत्। -श्वेताश्वतरोपनिषद् 4 अ. 19 मं.

अर्थ- अतिसूक्ष्म अवयव रहित उस ईश्वर की कोई मूर्ति या तस्वीर नहीं है।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।

असक्तं सर्वभृच्चैवं निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। -गीता अ. 13 श्लोक 14

अर्थ- वह ब्रह्म सब इंद्रियों से रहित है तो भी काम सब इंद्रियों के कर सकता है। वह निरासक्त होकर स्वयं निर्गुण है, किंतु हर गुणी के गुण को यथार्थ रूप से जानने के कारण गुण-भोक्ता है।

स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। -यजु. 32/2

अर्थ- वह प्रभु संपूर्ण सृष्टि में ओत-प्रोत है और प्राणीमात्र के रोम-रोम में व्याप्त है।

शं नो अज। -ऋ. 7/35/13

अर्थ- वह परमपिता परमात्मा जन्म नहीं लेता।

अपाणि पादोजवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।

-श्वेताश्वतर उप. 3/19

अर्थ- वह परमेश्वर हाथ पैरों से रहित है, वह आंख न होकर भी देखता है और कान न होकर भी सुनता है।

स देव सोम्येदग्र आसीत् -छान्दोग्य उप. 6/2/1

अर्थ- जिसके द्वारा प्राण क्रियाशील होते हैं, उसे तू ब्रह्म जान।

सर्वमावृत्य तिष्ठति -गीता 13/13

elibrary.thearyasamaj.org

अर्थ– संपूर्ण सृष्टि को उसने (ईश्वर ने) व्याप्त कर रखा है।

सर्वेन्द्रियविवर्जितम् –गीता 13/14

अर्थ– वह (ईश्वर) प्राणीमात्र के बाहर और भीतर विद्यमान है।

हृदि सर्वस्यविष्ठितम् –गीता 13/17

अर्थ– वह सभी के हृदयों में अवस्थित है।

देहेऽस्मिन पुरुषः परः। –गीता 13/22

अर्थ– इस देह में अन्य एक परम पुरुष (परमात्मा) निवास करता है।

अपांपृष्ठमसि योनिरग्ने –यजु. 13/2

अर्थ– परमात्माज्ञ सब ओर से सर्वत्र व्यापक है।

अरुपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् –वेदान्त दर्शन 3/2/14

अर्थ– ब्रह्म को रूप आकार रहित मानना चाहिए।

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि।। –वेदान्त दर्शन 3/2/11

अर्थ– परमात्मा उभय लिंगी नहीं हो सकता।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुःतदुचन्द्रमा। –यजु. 23/60

अर्थ– वही ईश्वर गुणानुरूप होने से अग्नि, सूर्य, वायु, चंद्रमा आदि है।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः। –यजु. 40/5

अर्थ– वह ईश्वर सब प्राणियों के भीतर और बाहर भी है।

येन प्राणः प्रणीयते, तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि। –केनोपनिषद् 1/8

अर्थ– जिसके द्वारा प्राण क्रियाशील होता है उसे तू ब्रह्म जान।

संविदुरजस्तद् ददृशक्व। अथर्व. 10/8/41

अर्थ– अजन्मा परमेश्वर को कहां देखा गया अर्थात् नहीं।

***

aryamantavya.org / e-library.thearyasamaj.org

लेखक परिचय

प्रा. डॉ. चन्द्रशेखर रामस्वरूप लोखण्डे(शास्त्री)

जन्म: 23 अक्टूबर 1948

स्थान : रेणापुर, जिला लातूर (महाराष्ट्र)

शिक्षा: गुरुकुल घटकेश्वर हैदराबाद, गुरुकुल महाविद्यालय मेरठ, बनारस संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, यशवन्तराव चव्हाण विश्वविद्यालय, नाशिक आदि में।

कार्यरत: जयक्रान्ति कनिष्ठ महाविद्यालय लातूर में हिंदी, संस्कृत प्राध्यापक के रूप में सेवानिवृत्त।

सामाजिक कार्य : महाराष्ट्र कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश के करीब 500 गांवों में जीवन के 21वें वर्ष से आर्य समाज का प्रचार-प्रसार।

पांच वर्ष तक महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा में उपदेशक के रूप में प्रचार कार्य। कई गांवों में आर्य समाज की स्थापना एवं नौजवानों को आर्य समाज में दीक्षित किया। 17 वर्षो तक चिकित्सा कार्य करते हुए नि:शुल्क चिकित्सा शिविर, पल्स पोलियो डोज के शिविर, नेत्र रोग शिविर, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा शिविरों का आयोजन।

वर्ष 1985 में राज्यस्तरीय महर्षि दयानंद बलिदान शताब्दी सम्मेलन रेणापुर के संयोजक के रूप में सफल कार्य 10 हजार लोगों की उपस्थिति में किये गये इस सम्मेलन में गायत्री महायज्ञ, नेत्र रोग शिविर, दयानंद चित्र प्रदर्शनी, अंतर्जातीय विवाहित दम्पत्तियों का सत्कार आदि नये उपक्रम आयोजित किये गये। स्वयं और परिवार में भाई-बहनों तथा बेटा-बेटियों के जातिवि. रहित आर्य परिवारों में विवाह करवाये। अब तक 24 के करीब गुण, कर्म स्वभावानुसार विवाह करवाए। पुरोहित के रूप में सैकड़ों संस्कार सम्पन्न किए।

वर्ष 1993 में किल्लारी (लातूर) के भूकम्प में आर्य समाज के युवा कार्यकर्ताओं के साथ लगातार तीन मास तक राहत का कार्य किया। जिसकी सार्वदेशिक सभा ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

स्वतंत्रता सेनानी स्व. गोविंद लालजी बाहेती अभिनन्दन समारोह के संयोजक के

रूप में कार्य किया। वैदिक महासम्मेलन 2002 लातूर के संयोजक के रूप में सम्मेलन को सफल बनाया।

वर्ष 1998 में 'हैदराबाद मुक्ति संग्राम स्वर्ण जयंती' के संयोजक के रूप में कार्य किया तथा 50 स्वतंत्रता सेनानियों का सत्कार किया। डॉ. बालकृष्ण शर्मा (गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक तथा प्रसिद्ध इतिहासज्ञ) के नाम से आर्य समाज राम नगर में ग्रन्थालय की स्थापना की और ग्रन्थालय के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत।

मुम्बई हिंदी विद्यापीठ मुम्बई के लातूर जिला प्रमुख के रूप में 25 वर्ष तक राष्ट्रभाषा प्रचार-प्रसार का कार्य किया। अब तक इस केन्द्र से 5000 हिंदी स्नातक निर्माण हुए, प्रत्येक वर्ष हिंदी एवं 'हैदराबाद मुक्ति संग्राम एवं आर्य सत्याग्रह के कार्यक्रम का आयोजन। इसमें सैकड़ों छात्र निबंध, भाषण, लेखन आदि प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं।

लेखन कार्य : आर्य समाज की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में जैसे-आर्य जगत सार्वदेशिक, आर्य मर्यादा, राजधर्म, मधुरलोक, आर्यनीति, युगमंथन, लोकमत, संचार, एकमत आर्य जीवन, आर्य सेवक, वैदिक गर्जना, आर्य संदेश, दक्षिण समाचार आदि में सैकड़ों लेख प्रकाशित। पुस्तकें 'नये युग की ओर आर्य समाज (विजय कुमार गोविंदराम हासानन्द, दिल्ली), 'स्वामी दयानंद संक्षिप्त चरित्र व विचार धन' कुछ गीत कुछ संगीत' 'हैदराबाद मुक्ति संग्राम का इतिहास' (श्री घूडमल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौनसिटी राजस्थान) जो 450 पृष्ठों का ग्रन्थ है, वेदों में पर्यावरण विज्ञान' (श्री घुडमल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौनसिटी राजस्थान), तथा मुट्ठी भर तूफान' (मानवतावादी एवं देशभक्तिपरक शेरोशायरी) आदि 24 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और हो रही हैं।

सत्कार एवं पुरस्कार : लोक साहित्य मंच व कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा गुलबर्गा में गवर्नर कर्नाटक के राज्यपाल टी.एन. चतुर्वेदी द्वारा सत्कार।

महाराष्ट्र राज्य के शिक्षामंत्री द्वारा मराठवाड़ा अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति औरंगाबाद की ओर से राज्य स्तरीय 'कार्य गौरव पुरस्कार'।

जिला पुलिस अधीक्षक श्री नांगरे पाटिल लातूर के द्वारा सम्मान, कर्नाटक। भटके विमुक्त आदिवासी मित्र' पुरस्कार से सम्मानित।

स्वामी रामानंद तीर्थ विश्वविद्यालय नांदेड के कुलपति द्वारा वेदों में पर्यावरण विज्ञान' के लेखक के रूप में सत्कार।

हैदराबाद में 'विद्यामार्तण्ड' उपाधि से विभूषित।

-प्रकाशक